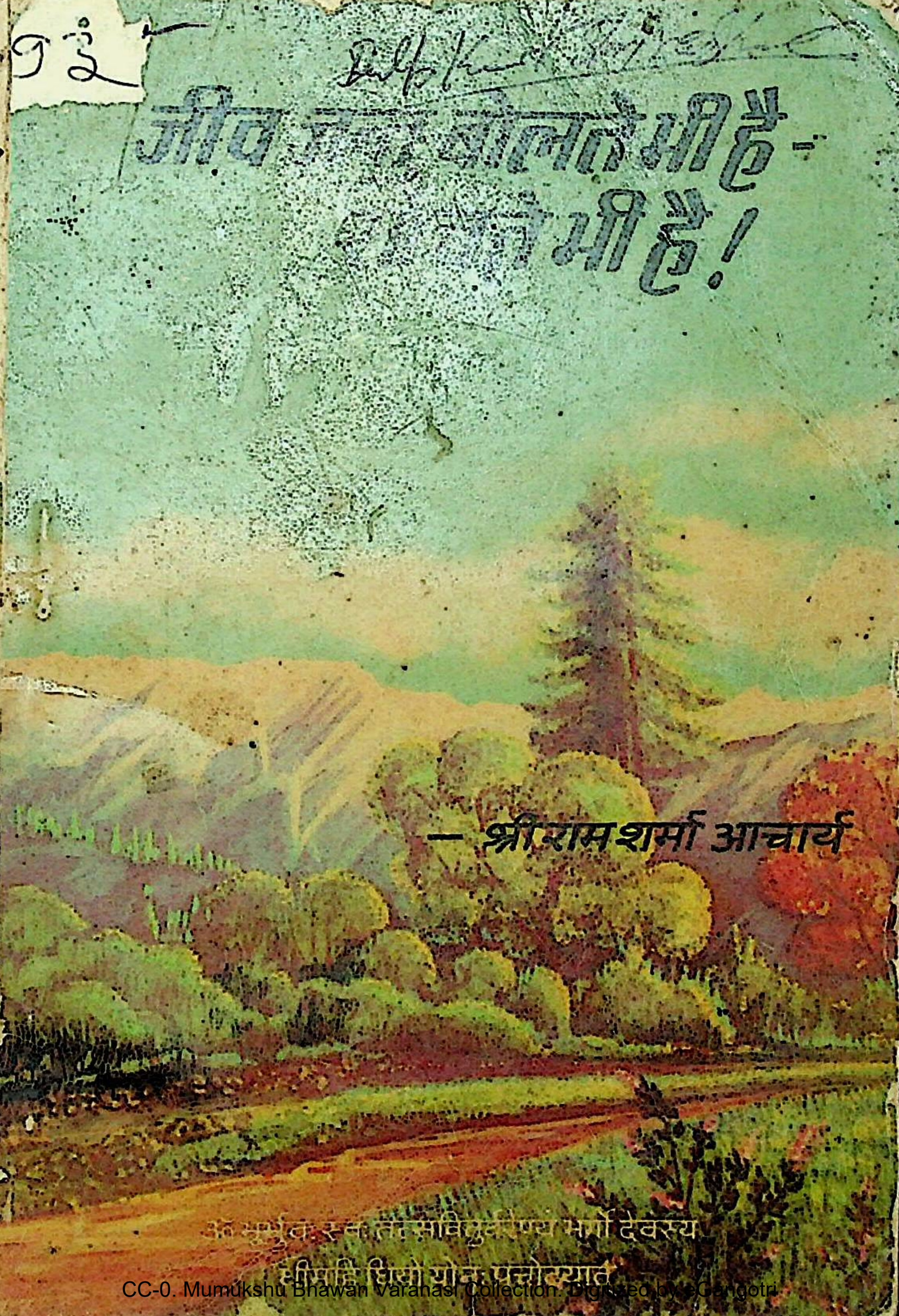


जीव ... बोलते भी हैं -
... भी हैं!
— श्रीराम शर्मा आचार्य
ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

अध्यात्म का विज्ञान की पृष्ठभूमि पर प्रतिपादन, अपने युग की सर्वोपरि आवश्यकता है। बुद्धिवाद, प्रत्यक्षवाद और उपयोगितावाद की तीन कसौटियों पर यदि आदर्शवादी तत्व ज्ञान खरा न उतरा तो वर्तमान परिस्थितियों में उसे अपना अस्तित्व बनाये रखना सम्भव न हो सकेगा। आदर्शवाद आस्थाएँ गँवा देने के बाद मानवी गरिमा भी जीवित न रह सकेगी। नीति और धर्म की उत्कृष्टता खो बैठने के बाद मनुष्य चिन्तनशील पशु और आततायी पिशाच के अतिरिक्त और कुछ रह न जायगा। ऐसे लोगों की भरमार से अपनी सुन्दर दुनिया का अगले दिनों समृद्ध रहते हुए भी अनास्था भरे वातावरण में दम घुटना और सर्वनाश होना सुनिश्चित है।

इन दिनों इस महाविनाश के पथ पर मनुष्य दौड़ता चला जा रहा है। उसे बचाने के लिए आदर्शवादी तत्व दर्शन को जीवन्त रखना होगा। यह कार्य कठिन है। धर्म और अध्यात्म का प्रतिपादन अब तक आप्तवचन और शास्त्र आधार के सहारे होता रहा है। पिछले दिनों श्रद्धा ही सब कुछ रही है। उसे मान्यता भी मिली है। पर अब वह स्थिति नहीं रही। तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण, प्रत्यक्ष की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर हर मान्यता को नये सिरे से परखा जा रहा है। ऐसी स्थिति में आवश्यक हो गया है कि मानवी गरिमा की आत्मा—आदर्शवादी आस्था को प्रत्यक्षवाद की अग्नि परीक्षा में से गुजरने और अपना खरापन सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया जाय।

अभी तक मासिक अखण्ड-ज्योति के माध्यम से स्फुट प्रतिपादन का क्रम चलता रहा है। उसकी अनुकूल प्रतिक्रिया का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि वह धार्मिक पत्रिकाओं में से सर्वाधिक संख्या में प्रकाशित होती और पढ़ी जाती है। दूसरी पत्र-पत्रिकायें पाठकों पर तात्कालिक प्रभाव तो डालती हैं, पर उनसे व्यक्ति के जीवन में कोई चिरस्थायी प्रभाव नहीं उमड़ता। अखण्ड-ज्योति पाठक का अन्तःकरण स्पर्श करती और उसे जीवन की सुनिश्चित दिशा प्रदान करती है। ऐसे २० लाख व्यक्तियों का एक परिवार ही विनिर्मित हो गया है। अब उस स्फुट प्रतिपादन को व्यवस्थित पुस्तकाकार रूप प्रदान किया गया है। एक ही विषय की सांगोपांग और विगत ११ वर्षों के अध्ययन का निचोड़ अपने आप में अनूठी उपलब्धि मानी जा सकती है।

अखण्ड-ज्योति प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक माला इस सन्दर्भ में आरम्भ किया गया एक विनम्र प्रयास है। इसके पीछे आदर्शवाद अपनाकर चलने वाली पीढ़ियों का उज्ज्वल भविष्य झाँकते देखा जा सकता है।

प्रथम किस्त में ४२ पुस्तकों की सीरीज प्रस्तुत है। यह प्रकाशन अनवरत क्रम से जारी रहेगा और एक से एक बढ़कर उपयोगी प्रकाशन प्रस्तुत करेगा।

जीव जन्तु बोलते भी हैं, सोचते भी हैं

★

लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

प्रकाशक :

अखण्ड-ज्योति प्रकाशन

मथुरा

प्रथम बार]   १९७९   मूल्य ३.००

विषय-सूची

शरीर बुद्धि. भावनायें उनकी अभिव्यक्ति और भाषा की दृष्टि से मनुष्य का अन्य प्राणियों की तुलना में बढ़ा-चढ़ा होना मात्र एक भ्रम है। यह अभ्यास जरूर होता है कि वह अन्य प्राणियों से बढ़ा-चढ़ा और उन्नत है। सम्भव है यह भ्रम अन्य प्राणियों में भी हो। जिन आधारों पर मनुष्य की श्रेष्ठता सिद्ध की जाती है. वे तो झूठ हैं. वे तो झूठ हैं ही परन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि वस्तुतः मनुष्य अन्य प्राणियों के समान ही है। निस्संदेह मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठ और परमात्मा का सबसे बड़ा पुत्र है क्योंकि मनुष्य जीवन एक अवसर है जिसमें यह सिद्ध किया जा सकता है कि परमात्मा ने हमें जो वस्तुयें, जो विशेषतायें और जो अधिकार दिये हैं उनका हम सदुपयोग कर सकते हैं और अपनी प्रामाणिकता कर्त्तव्य परायणता के आधार पर और अधिक उच्च स्थिति प्राप्त करने के योग्य सिद्ध कर सकते हैं।

क्या सचमुच मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है ?



मनुष्य द्वारा अपनी सर्व श्रेष्ठता को ढेरों प्रमाणों और अनेको तथ्यों के आधार पर चाहे जिस ढंग से सिद्ध कर लिया जाय, पर इसमें कोई तथ्य है भी अथवा नहीं यह भी विचार किया जाना चाहिए।

मनुष्य की सर्व श्रेष्ठता का आधार यही तो माना जाता है कि उसमें बुद्धि एवं विवेक का तत्व विशेष है। उसमें कर्त्तव्य परायणता, परोपकार, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति सहृदयता तथा सम्वेदनशीलता के गुण पाये जाते हैं। किन्तु इस आधार पर वह सर्वश्रेष्ठ तभी माना जा सकता है जब सृष्टि के अन्य प्रणियों में इन गुणों का सर्वथा अभाव हो और मनुष्य इन गुणों को पूर्ण रूप से क्रियात्मक रूप से प्रतिपादित करें। यदि इन गुणों का अस्तित्व अन्य प्राणियों में भी पाया जाता है और वे इसका प्रतिपादन भी करते हैं तो फिर मनुष्य को सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानने के अहंकार का क्या अर्थ रह जाता है।

शेर हाथी, गैंडा चीता, बैल, भैंसे, गीध, शतुरमुर्ग, मगर, मत्स्य आदि न जाने ऐसे कितने थलचर, नभचर और जलचर जीव परमात्मा की इस सृष्टि में पाये जाते हैं जो मनुष्य से सैकड़ों गुना अधिक शक्ति रखते हैं। मछली जल में जीवन भर तैर सकती है, पक्षी दिन-दिन भर आकाश में उड़ते रहते हैं क्या मनुष्य इस विषय में उनकी तुलना कर सकता है ? परिश्रम शीलता के सन्दर्भ में हाथी, घोड़े ऊँट, बैल, भैंसे आदि उपयोगी तथा घरेलू जानवर जितना परिश्रम करते और उपयोगी सिद्ध होते हैं, उतना शायद मनुष्य नहीं हो सकता। जबकि इन पशुओं तथा मनुष्य के भोजन में बहुत बड़ा अन्तर होता है।

पशु-पक्षियों के समान स्वावलम्बी तथा शिल्पी तो मनुष्य हो ही नहीं सकता। पशु-पक्षी अपने जीवन तथा जीवनोपयोगी सामग्री के लिए किसी पर कभी भी निर्भर नहीं रहते। वे जंगलों पर्वतों, गुफाओं तथा पानी में अपना आहार आप खोज लेते हैं। उन्हें न किसी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता पड़ती है और न किसी संकेतक की। पशु-पक्षी स्वयं एक दूसरे पर भी इस सम्बन्ध में निर्भर नहीं रहते। अपनी रक्षा तथा आरोग्यता के उपाय भी बिना किसी से पूछे ही कर लिया करते हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में पशु-पक्षियों जैसा स्वावलम्बन मनुष्यों में कहाँ पाया जाता है। यहाँ तो मनुष्य एक दूसरे पर इतना निर्भर है कि यदि वे एक दूसरे की सहायता न करते रहें तो जीना ही कठिन हो जाये।

विलक्षण बौद्धिक क्षमतायें आदि काल से ही वैज्ञानिकों और जीवशास्त्रियों के लिये एक प्रकार की चुनौती रही हैं। बुद्धि, ज्ञान, चिन्तन की क्षमता—यही वह तत्व हैं जो मृत और जीवित का अन्तर स्पष्ट करते हैं। अतएव जीवन को बौद्धिक क्षमता में केन्द्रित कर वैज्ञानिक प्रयोगों की प्रणाली अपनाई गई। इस दिशा में मस्तिष्क की जटिल संरचना एक बहुत बड़ी बाधा है इस कारण रहस्य अभी तक रहस्य ही बने हुये हैं, तथापि अब तक जितना जाना जा सका है, उससे वैज्ञानिक यह अनुभव करने लगे हैं कि बुद्धि एक सापेक्ष तत्व है अर्थात् सृष्टि के

किसी कौने से समष्टि मस्तिष्क काम कर रहा हो तो आश्चर्य नहीं, जीवन जगत उसी से जितना अंश पा लेता है उतना ही बुद्धिमान होने का गौरव अनुभव करता है।

वैज्ञानिक अब इस बात को अत्यधिक गम्भीरता से विचारने लगे हैं कि मानव-मस्तिष्क और उसकी मूलभूत चेतना का समग्र इतिहास अपने इन कम विकसित समझे जाने वाले भाइयों के मस्तिष्क की प्रक्रियाओं से ही जाना जा सकता है। इसके लिये अब तरह-तरह के प्रयोग प्रारम्भ किये गये हैं।

मनुष्य की तरह ही देखा गया कि कई बार एक कुत्ता अत्यधिक बुद्धिमान पाया गया। जब कि उसी जाति के अन्य कुत्ते निरे बुद्धू निकले। चूजे अपने बाप मुर्गे की अपेक्षा अधिक बुद्धिचातुर्य का परिचय देते हैं। डाल्फिन मछलियों की बुद्धिमता की तो कहानियाँ भी गढ़ी गई हैं। बुद्धि परीक्षा के लिये कोई बहुत सम्वेदनशील यन्त्र तो अभी तक नहीं गढ़े जा सके किन्तु स्वादिष्ट भोजन की पहचान, जटिल परिस्थितियों के हल आदि के लिये जो विभिन्न प्रयोग किये गये उनसे पहली दृष्टि में यह स्पष्ट हो गया कि बन्दर, डाल्फिन, (काली की अपेक्षा लाल लोमड़ी) अधिक चतुर होते हैं नीलकण्ठ, संघकाक और कौवों की बुद्धि स्वार्थ प्रेरित जैसी होती है - विवेक जनक नहीं। रूस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० लियोनिद क्रुशिन्स्का ने अपने विचित्र प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि जिस तरह चिन्तन से मानवीय शक्ति का ह्रास होता है, पशु-पक्षियों में भी यह प्रक्रिया यथावत होती है। इनमें कुछ तो डर जाते हैं, कुछ बीमार पड़ जाते हैं सम्भवतः इन्ही कारणों से वे जीवन की गहराइयों में नहीं जाकर प्राकृतिक प्रेरणा से सामान्य जीवन यापन और आमोद-प्रमोद के क्रिया-कलापों तक ही सीमित रह जाते हैं।

प्रो० क्रुशिन्स्की के अनुसार तर्क, विवेक और प्राकृतिक हलचलों के अनुरूप अपने को समायोजित करने की बुद्धि अन्य प्राणियों में भी यथावत होती है इसी कारण वे पर्यावरण की समस्याओं को झेलतें हुये

भी अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं जब कि मनुष्य उनमें बुरी तरह जकड़ता जा रहा है। उसके अपने ही कारनामे चाहे वह विशाल औद्योगिक प्रगति हो या अणु-आयुधों का निर्माण, उसके अपने ही विनाश के साधन बनते जा रहे हैं।

पेट ही मनुष्य का साध्य हो, तब तो उससे अच्छा कर्कट है, जो रहता तो समुद्र में है किन्तु वह नारियल वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ लाता है।

जीवों की बुद्धिमत्ता अपने विकसित रूप में तब अभिव्यक्त होती है जब उनके सामने कोई संकट आ जाता और आत्म रक्षा की आवश्यकता आ पड़ती है। हिरन, खरगोश, चीते और कंगारू बहुत तेज दौड़ते हैं किन्तु जब इन्हें अपने सामने कोई संकट आता दिखाई देता है तब ! वे जानते हैं कि उस स्थिति में सामान्य गति से बचाव नहीं किया जा सकता अतएव वे अपनी गति को अत्यधिक तीव्र कर देते हैं। चीता उस स्थिति में १०० किलोमीटर प्रति घन्टे की रफ्तार से दौड़ जाता है, कंगारु उस स्थिति में हवा में जोरदार कुलाचें लगाता है जिससे उसकी मध्यम गति अपनी प्रखरता तक पहुँच जाती है। यदि भागने में भी जान न बचे तो वह खड़े होकर अपना शक्ति प्रदर्शन करते हैं। बिल्ली अपने बाल फुलाकर तथा गुर्राकर यह प्रदर्शित करती है उसकी शक्ति कम नहीं, कुछ जानवर दाँत दिखाकर शत्रु को डराते हैं, तो कुछ घुड़ककर, कुछ पंजों से मिट्टी खोदकर इस बात के लिए भी तैयार हो जाते हैं कि आओ जब नहीं मानते तो दो-दो हाथ कर ही लिये जायें। स्याही तो मुँह विपरीत दिशा में करके अपने नुकीले तेज काँटे इस तरह फर्राकर फैला देती है कि शत्रु को लौटते ही बनता है। अमेरिका में पाई जाने वाली स्कंक नामक गिलहरी अपने शरीर से एक विलक्षण दुर्गन्ध निकाल कर शत्रु को भगा देती है। आस्ट्रेलिया के कंगारू रैट तो सचमुच ही आँखों में धूल झोंकना, जो कि बुद्धिमत्ता का मुहावरा है, जानता है। कईबार साँप का उससे मुकाबला हो जाता है तो यह

अपनी पिछली टाँगों से इतनी तेजी से धूल झाड़ता है कि कईवार तो सर्प अन्धा तक हो जाता है। उसे अपनी जान बचाकर भागते ही बनता है।

कछुआ, कर्कट तथा अमेरिका में पाये जाने वाले पैंगोलिन व आर्मडिलो शत्रु-आक्रमण के समय अपने सुरक्षा कवच में दुबक कर अपनी रक्षा करते हैं तो बारहसिगा युद्ध में दो-दो हाथ की नीति अपना कर अपने पैने सींगों से प्रत्याक्रमण कर शत्रु को पराजित कर देता है।

कहते हैं कि भालू मृत व्यक्ति पर आक्रमण नहीं करते। इसकी पहचान के लिये वे नथुनों के पास मुँह ले जाकर यह देखते हैं कि अभी साँस चल रही है या नहीं। चतुर लोग अपनी साँस रोक कर उसे चकमा दे जाते हैं यह बात कहाँ तक सच है कहा नहीं जा सकता, किन्तु ओपोसम सचमुच ही विलक्षण बुद्धि और धैर्य का प्राणी है वह संकट के समय अपनी आँखें पलट कर जीभ लटका कर मृत होने का ऐसा कुशल अभिनय करता है जैसा 'सनेमा के नायक'। इस तरह अपनी सूझबूझ से वह अपने को मृत्यु के मुख में जाने से बचा लेता है।

मोर आक्रमण की स्थिति से नृत्य मुद्रा में निबटता है अपने पंखों को छत्र की तरह बनाकर वह आक्रमणकारी रोष प्रकट कर शत्रु को धमका देता है। कुछ छोटे-छोटे पक्षी तो और भी चतुराई दिखाते हैं आक्रामक को देखकर ये लँगड़ा कर चलने का नाटक करते हैं। इससे इस बात का भ्रम होता है कि पहले ही इसे किसी ने घायल कर दिया है। इस स्थिति में आगंतुक सीधे आक्रमण करने की अपेक्षा पीछा करने की नीति अपनाता है। काफी दूर तक तो वह इसी तरह पीछे-पीछे भगाता है इसी बीच वह एकदम फुर्र से उड़ जाता है और शिकारी टापता ही रह जाता है।

वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ (विश्व वन्य जीवन) त्रैमासिक पत्रिका के एक संस्करण में मलेशिया में पाई जाने वाली मछली एक्रोवेट का वर्णन छपा है। जिसमें बताया गया है कि यह मछली भोजन की

तलाश में अपने बड़े-बड़े पंखों के सहारे वृक्षों पर भी चढ़ जाती है। यही नहीं वह अपने थुथने में पानी भर कर इस तरह की क्रिया करती है कि वह थुथना बन्दूक का सा काम करता है और पानी गोली का। अपनी इस प्राकृतिक गन से वह अपने भोजन के उपयुक्त जीवों का स्वयं शिकार कर लेती है। उसमें यह भी समझ होती है कि किस जीव को मारने के लिये कितनी बड़ी गोली प्रयुक्त की जाये। दागते समय वह उतने ही जल का प्रयोग करती है।

डेव हेड होव-कीड़ विलक्षण ध्वनियाँ निकाल लेने में बड़ा चतुर होता है। उसे यदि कहीं मधुमक्खी का छत्ता दीख जाये तो वह रानी मक्खी की-सी आवाज निकालता है। अन्य मक्खियाँ भुलावे में आ जाती हैं और यह महोदय चुपचाप छत्ते में घुसकर शहद चोरी कर लाते हैं।

हाथी की खोपड़ी ही बड़ी नहीं होती अपितु उनमें उसी अनुपात की बुद्धिमत्ता भी है। वे सूक्ष्म संकेतों को भी थोड़े प्रशिक्षण के बाद ही समझने लगते हैं। यही कारण है कि उसे भूतकाल में युद्ध भूमि में प्रयुक्त किया गया था। आज भी सवारी के काम में, सागौन के जंगलों में स्लीपर ढोने तथा सरकसों में विविध करतब दिखाने में प्रयुक्त होते हैं। जगपति चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'जीव जन्तुओं की बुद्धि' में लिखा है एक हाथी ने एक बच्चे की जेब में सूँड़ डाली पता चला कि उसकी जेब में चीनी है हाथी उसे ही लेना चाहता था। हाथी को मिष्ठान्न अधिक प्रिय है सम्भवतः इसी से उसकी तुलना मोदक प्रिय गणेश जी से की जाती है। हाथी अपने गिरोह की प्रधान किसी वयोवृद्ध हथिनी को बनाते हैं इससे उनके मातृत्व के प्रति सम्मान का परिचय मिलता है।

सामान्य बुद्धि से देखें तो चींटियों का ही क्या मनुष्य जीवन भी खा-पीकर वासना, तृष्णा, अहंता में बिताया जाने वाला बेकार-सा जीवन है पर उपयोगिता और उपादेयता तब स्पष्ट होती है जब जीवन-प्रक्रिया के सूक्ष्म-तत्वों का भी बारीकी से अध्ययन, चिन्तन, और मनन

किया जाये। चीटियाँ यों ढेर में बिलबिलाती दीखती हैं पर उनका हर कार्य व्यवस्थित-नियन्त्रित और अपनी प्रभुसत्ता सम्पन्न रानी के इंगित पर चलता है। कोई भी चींटी न तो कभी निष्क्रिय होगी, न व्यर्थ के कार्य करेगी ! जो कार्य जिसे सुपुर्द है वह वही करेगी। नर का काम है परिश्रम पूर्वक खाद्यान्न व्यवस्था, सैनिक पहरेदारी करते, मजदूर बोझा ढोते शव बाहर निकालते और शिल्ली भवन-निर्माण में जुटे रहते हैं। यही व्यवस्था मधुमक्खियों में भी समान रूप से पाई जाती है। मनुष्य की तरह पेट और प्रजनन में व्यस्त रहने पर भी उनमें अव्यवस्था और उच्छृङ्खलता के लिये कोई स्थान नहीं।

इन्जीनियरिंग दक्षता विज्ञान युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भारी-भारी बाँधों के निर्माण से लेकर नहर निकाल कर जन-सुविधायें बढ़ाने के अनेक बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य हो रहे हैं किन्तु इस तरह का बुद्धि कौशल अन्य जीवों में भी कम नहीं। ऊदबिलाव को तो जीव शास्त्रियों ने कुशल इंजीनियर की पदवी तक दे डाली है। यह सुरंगी नहरें बनाने तथा मिट्टी के पुल निर्माण करने में बड़ा पटु होता है। हैम्पटन नगर में इस ऊदबिलाव के कारनामों से तो लोग बहुत ही तंग रहते हैं। नगर के बाहर एक झील है। ऊदबिलावों ने वहाँ से नगर के भीड़ वाले इलाकों तक में भीतर-भीतर सुरंगें बना रखी हैं। बहुत प्रयत्न करने के बाद भी आज तक न तो ऊदबिलाव ही पकड़े जा सके और न ही वह नहरें बन्द की जा सकीं जो इन्होंने जमीन के अन्दर-अन्दर बना रखी हैं।

मनुष्य शिल्प शिक्षा, अनुकरण तथा उपकरणों पर निर्भर रहता है। वह कोई भी वस्तु अथवा स्थान का निर्माण बिना किसी से सीखे, देखे अथवा औजारों के अभाव में नहीं कर सकता। जबकि पशु-पक्षी अपना निवास स्वयं अपनी अन्तर्प्रेरणा से बना लिया करते हैं। न तो वे उसके लिये किसी के पास शिक्षा लेने जाते हैं और न उन्हें किन्हीं उपकरणों की आवश्यकता होती है। लोमड़ी, बिलाव तथा शृगालों आदि के निवास कक्ष देखते ही बनते हैं। वे अपनी मादों तथा विवरों में सब

प्रकार की सुविधा का समावेश कर लेते हैं। पक्षियों के घोंसले तथा कोंटर तो उनकी निर्माण कला के जीते जागते नमूने ही होते हैं। वया का घोंसला, मधुमक्खी का छत्ता, मकड़ी का जाला तथा चींटी, का विवर देखकर तो यही कहना पड़ता है कि परमात्मा ने इन क्षुद्र समझे जाने वाले जीवों को गजव की निर्माण वुद्धि दी है। वह सूक्ष्म शिल्प देखकर मनुष्य का मन ईर्ष्या कर उठता है।

पशु-पक्षी अपनी घ्राण तथा दृष्टि शक्ति से ऋतुओं तथा आपत्तियों का ज्ञान इतना शीघ्र, सच्चा और यथार्थ रूप से कर लेते हैं कि मनुष्य के वनाये वैज्ञानिक वैरोमीटर आदि यन्त्र भी नहीं कर सकते। लोग पक्षियों एवं पशुओं की गतिविधियाँ देखकर ऋतु तथा संभाव्य के सम्बन्ध में वड़े-वड़े निर्णय कर लेते रहे हैं और उस सम्बन्ध में उन्हें कभी धोखा नहीं हुआ है। आज कल के प्रशिक्षित कुत्तों ने तो अपराधों तथा अपराधियों की खोज में चतुर से चतुर जासूसों को मात दे दी है। पशु-पक्षी किसी भी ज्योतिषी से बढ़कर आकाश की गतिविधियों का अध्ययन कर लेते हैं, उन्हें उनकी तरह किसी वेधशाला की आवश्यकता नहीं होती, उनकी वेधशाला उनकी नासिका तथा आँखों में ही वनी हुई है। पशु-पक्षियों से अधिक मार्ग का ज्ञान मनुष्यों के लिये किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। एक स्थान के पक्षी को किसी भी स्थान पर ले जाकर क्यों न छोड़ दिया जाये वह विना किसी भूल अथवा भ्रम के अपने स्थान पर लौट आयेगा। इसी विशेषता के कारण वहुत समय तक कवूतर तथा हंस आदि पक्षी पत्र-वाहक का उत्तरदायित्व निर्वाह करते रहे हैं।

यदि पशु-पक्षियों को प्रशिक्षित करने पर ध्यान दिया जाय तो वे भी मनुष्यों की तरह वुद्धिमान हो सकते हैं। मनुष्य भी आदिम काल में अन्य प्राणियों की तरह ही अनपढ़ था। सहयोग की वृत्ति अधिक रहने से एक ने दूसरे की सहायता की और संचित अनुभव का लाभ अपने साथियों को मिल सके इसका प्रयत्न किया। एक का अनुदान

दूसरे को मिलने की पुण्य प्रक्रिया ने मनुष्य को पीढ़ी दरपीढ़ी अधिक बुद्धिमान और अधिक क्रियाकुशल बनाया है। यदि यही आधार अन्य प्राणियों को मिल सके तो वे भी अब की अपेक्षा कहीं अधिक बुद्धिमान हो सकते हैं। उनमें भी वे सब तत्त्व मौजूद हैं जो मनुष्य की तरह बुद्धिमान बन सकने का द्वार खोल सकते हैं। मनुष्य चाहे तो इस दिशा में अन्य प्राणियों की बहुत सहायता कर सकता है। अविकसित मस्तिष्क के बालकों को कुशल अध्यापक लिखा-पढ़ा कर बुद्धिमान बना देता है तो कोई कारण नहीं कि अन्य प्राणियों को प्रशिक्षित बनाने के लिए किये गये प्रयत्नों को सफलता न मिले।

इस संदर्भ में अमेरिका में मिसिसिपी राज्य के अन्तर्गत पोपरविल नामक कस्बे के निवासी केलर ब्रिलैण्ड नामक एक अधेड़ सज्जन विशेष रूप से प्रयत्न कर रहे हैं। यों वे मनोविज्ञान शास्त्र के स्नातक हैं, पर उन्होंने अपना प्रमुख कार्य तरह-तरह के प्राणियों को उनके वर्तमान स्तर से आगे की शिक्षा देकर अधिक बुद्धिमत्ता का परिचय दे सकने योग्य बनाने का अपनाया है। पशु मनोविज्ञान शास्त्र में उनके प्रयत्नों ने नई कड़ियाँ सम्मिलित की हैं।

ब्रिलैण्ड की पत्नी मेरियन भी इस प्राणि प्रशिक्षण कार्य में पूरी सहायता कर रही हैं। इन दिनों उन्होंने लगभग ४० किस्म के जीवों को अपने स्कूल में 'भर्ती किया हुआ है। जिनमें मछली, चूहे, कुत्ते, मुर्गे, तोते आदि सभी किस्म के प्राणी सम्मिलित हैं। अब तक उनके स्कूल से लगभग एक हजार प्राणी आश्चर्यजनक कार्य कर सकने और आकर्षण केन्द्र बन सकने योग्य विशेषताएँ प्राप्त करके विदा हो चुके हैं। प्रशिक्षित जीवों को खरीदने वाले शौकीनों की कमी नहीं रहती, वे अपने मन-पसन्द के प्राणी अच्छा मूल्य देकर खरीद ले जाते हैं और मनोरंजन का आनन्द लेते हैं। शिक्षकों को भी इस धंधे से अच्छी आजीविका प्राप्त होती रहती है।

इस विद्यालय की एक कक्षा की मुर्गियाँ आज्ञा देने पर जूक

वाक्स का स्विच दवाकर फिल्मी रिकार्ड चालू कर देती हैं और उनकी ध्वनि पर तालवद्ध नृत्य करती हैं।

मुर्गे टीम बनाकर खिलाड़ियों की तरह अपने-अपने मोर्चे पर आमने-सामने खड़े होते हैं और उस क्षेत्र में प्रचलित 'वैसवाल' खेल, सही कायदे, कानून के अनुसार खेलते हैं। उनमें से न कोई वेईमानी, चालाकी करता है और न लापरवाही। जो पार्टी हार जाती है वह विना अपमान अनुभव किये, पर फैला कर रेत में वैठ जाती है।

रेनडियर प्रेस की मशीन चलाते हैं। कुत्ते वास्केट वाल खेलते हैं। वतखें स्वसंचालित ढोल वजाने की मशीन को चलाती हैं, दर्शक उस वाजे का आनन्द लेते हैं।

खरगोश पियानो वजाते और दस फुट दूरी तक ठोकर मारकर गेंद फेंकते हैं। वकरियाँ कुत्ते के वच्चों को पालतीं और अपना दूध पिलाती हैं।

यह सारी शिक्षा व्रिलैंड ने पुरुस्कार का प्रलोभन देकर पूरी कराने की तरकीव निकाली है। वे इन प्राणियों को आरम्भ में एक कार्य सिखाते हैं। पीछे जव वे मालिक की मर्जी समझने और निवाहने का संकेत समझ लेते हैं तो प्रत्येक सफलता पर स्वादिष्ट भोजन देने का उपहार दिया जाने लगता है। उन्हें सामान्य रीति से भोजन नहीं मिलता। उपहार पर ही उन्हें निर्वाह करना पड़ता है। लोभ से, अवश्यकता से अथवा विवशता से प्रेरित होकर वे सिखाये गये कामों को पूरा करते हैं और दर्शकों का मनोरंजन तथा शिक्षकों का पारिश्रमिक जुटाते हैं। काम करो तो खाना मिलेगा अन्यथा नहीं। यह तरीका सारी प्रशिक्षण प्रक्रिया की धुरी है।

कुछ जानवर स्वभावतः चतुर होते हैं और कुछ मन्द वुद्धि। चतुर अपनी सीखी विधि को फुर्ती के साथ इशारा पाते ही पूरा कर देते हैं पर कुछ या तो भूल जाते हैं या उपेक्षा करते हैं। उन्हें कठिन और वढ़िया काम से हटाकर सरलता से हो सकने वाले खेल सिखा दिये

जाते हैं। एक रैकून को जब बचत के पैसे जमा करने वाले डिब्बे में गिनती के पैसे डालने में अभ्यस्त न बनाया जा सका तो सीटी बजाने की सरल शिक्षा देकर छुट्टी दे दी गई।

संदेश वाहक कबूतर, नियमित रूप से नियत स्थानों पर पहरेदारी करने वाले कुत्ते, बिखरे सामान को इकट्ठा करने वाली बिल्लियाँ, रेडियो बजाने के शौकीन रैकून अपने बताये हुए काम ठीक तरह करते हैं।

अधिक समझदार जानवरों में कुत्ते और बन्दर आते हैं। वे किसी छोटी फैक्ट्री या दुकान के मालिक का पूरी तरह हाथ बटाते हैं। ढेर की वस्तुओं को छाँटकर अलग अलग कर देना, उन्हें अलग-अलग स्थानों पर यथा क्रम लगा देना, उन्हें कुछ ही दिन में आ जाता है। घड़ी देखकर नियत समय का अनुमान कर लेना और तदनुसार अपनी ड्यूटी में हेर-फेर कर देना उनमें से अधिकांश को आ जाता है। प्रेसर, कुकर में भोजन पकते छोड़कर मालिक चला जाता है और जब पकजाने की सीटी बजती है तो बन्दर द्वारा स्विच बन्द करके उस काम को पूरा कर देना सहज ही आता है। ऐसे-ऐसे अनेक काम वे सीख जाते हैं। तोता, मैना मनुष्य की नकल करने के लिए प्रसिद्ध थे और अन्य कई पशु-पक्षियों को भी थोड़ा बहुत मानवी भाषा और उसका तात्पर्य समझने का अभ्यास होने लगा है।

ब्रिलैण्ड केलर का २८० एकड़ भूमि पर बना प्राणि प्रशिक्षण ग्रह—"एनीमल विहेवियर एन्टर प्राइस' के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी वार्षिक आमदनी २५ लाख रुपया है। इस आय से वे नई प्रयोगशालाएँ और नये प्रशिक्षण ग्रह स्थापित करते जा रहे हैं। अब तक सरकस वालों को ही पद श्रेय प्राप्त था कि वे खतरनाक जानवरों को कुछ खेल दिखाने के लिए प्रशिक्षित करते हैं। इस दिशा में ब्रिलैण्ड के प्रयोग प्राणियों के बौद्धिक विकास की समस्या सुलझाने की दृष्टि से हो रहे हैं। उनकी शिक्षण पद्धति को क'डीशनिंग थियरी' कहा जाता है। जिसका

आधार प्राणियों को यह समझा देना कि 'ऐसा करने से ऐसा होगा।' कर्मफल का सिद्धान्त जानकर पशु-पक्षी भी यह समझ जाते हैं कि हमारे लिए क्या करना लाभदायक है और क्या करना हानिकारक। एक मनुष्य ही ऐसा है जो सब कुछ सीख कर भी जीवन समस्याओं के सुलझाने में भूल पर भूल करता रहता है और कर्मफल के सिद्धान्त का जानकार होते हुए भी नशे बाजी जैसे अनेक प्रसंगों में उसकी पूरी उपेक्षा करता है।

प्रशिक्षण से पशु-पक्षी बौद्धिक विकास की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं और अपने लिए तथा दूसरों के लिए अधिक उपयोगी हो सकते हैं। ऐसा ही उपयोगी शिक्षण ४०० करोड़ आबादी वाले संसार में रहने वाले ३०० करोड़ पिछड़े लोगों को भी मिल सके तो वे आज की स्थिति से निस्संदेह कहीं ऊँचे उठ सकते हैं।

• मानवीय उत्कर्ष में उनका योग

इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि यदि प्रयत्न किये जाँय तो मानवीय सभ्यता के विकास में पशु-पक्षियों से काफी योगदान प्राप्त किया जा सकता है। पिछले दिनों कबूतर में पायी जाने वाली विलक्षण परीक्षण बुद्धि, स्मरण शक्ति का पता चला तो मास्को के एक इन्जीनियरिंग कारखाने के विशेषज्ञों ने उनकी इस अद्भुत क्षमता का उपयोग करने का निश्चय किया। एक बाल-बियरिंग कारखाने में बनने वाले बाल-बियरिंग में से कुछ खरोंच व चोट खाये बियरिंगों को छाँटकर अलग करने की समस्या थी। कुशल से कुशल कारीगर भी उन्हें खोजने में चूक जाते थे किन्तु कुछ कबूतरों को कुल ३ सप्ताह की ट्रेनिङ्ग देकर इस कार्य में लगाया गया तो उन्होंने कुशल कारीगरों को भी एक ओर धकेल दिया। अब इनमें से प्रत्येक कबूतर एक घण्टे में औसत ३५०० बाल-बियरिंगों की जाँच कर लेता है, विलक्षण बात तो यह है कि अभी तक उनमें चूक का प्रतिशत शून्य से ऊपर नहीं उठ पाया। मनुष्य के मस्तिष्क में "न्यूरोन" जिनमें स्मृति के बीज विद्यमान होते हैं, कणों की

संख्या अरबों-खरबों होती हैं। कबूतर की तुलना में इस मस्तिष्क का यदि पूर्ण विकास किया जा सके तो सारे संसार की जितनी लाइब्रेरियाँ हैं उन्हें केवल एक ही मनुष्य अपने एक ही जीवन काल में आसानी से कण्ठस्थ कर सकता है।

स्मरण-शक्ति में मधुमक्खियाँ, बरें तथा चींटियाँ अद्वितीय सामर्थ्यवान जीव हैं। इन पर कई प्रयोग करके यह देखा गया है कि वे चाहे जितना भटका दी जावें, उन्हें अपने घर तक पहुँचने में कोई दिक्कत नहीं होती। ध्वनि और गन्ध पहचानने की तो इनमें बहुत ही विचित्र क्षमतायें पाई जाती हैं। जर्मनी में एक विचित्र प्रयोग किया–टेलीफोन के एक रिसीवर से एक फीट दूर, एक मादा झींगुर और एक मादा टिड्डे को रखा गया। वहाँ से बहुत दूर पहले एक नर झींगुर को ट्रान्समीटर के पास रखा गया। जैसे ही उसने ट्रान्समीटर के पास ध्वनि की और वह ध्वनि रिसीवर तक पहुँची मादा झींगुर तुरन्त अपने स्थान से भागकर रिसीवर में जा घुसी, यद्यपि रिसीवर में उसे अपना प्रेमी नहीं मिला, पर अपने प्रेमी की आवाज पहचानने में उसने भूल नहीं की। मादा टिड्डा अभी अपने स्थान पर ही जमा था। दुबारा ट्रान्समीटर के पास टिड्डे की ध्वनि कराई गई तो इस बार रिसीवर में मादा टिड्डा भागकर आई और यह सिद्ध कर दिया कि वे अपने वंश को पहचानने की सूक्ष्म बुद्धि से पूरी तरह ओत-प्रोत हैं।

पानी के अन्दर घण्टों तक बने रहने का वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्य अब इस बीसवीं शताब्दी में कर पाया है, पर यह विद्या जल मकड़े को अनादि काल से ज्ञात है। वह पानी के अन्दर की शैवाल के सहारे अपना मकान बनाती है और उसमें चिरकाल तक आक्सीजन प्राप्त करते रहने के लिए सतह से बुलबुले पकड़-पकड़ कर जमा लेती है, यह बुलबुले ही उसे वायु देते रहते हैं और इस तरह मकड़ी वर्षों तक जल के भीतर बनी रहती है। मनुष्य ने आज जो जल में रहने की वैज्ञानिक-पद्धति का विकास किया है, इसकी मार्गदर्शक यह ज़लमकड़ी

ही है। फिर भी वह एक सीमित अवधि तक ही जल में रह सकता है वहाँ नियमित वस्तियाँ वसाने और आनन्दमय जीवन जीने योग्य परिस्थितियों के विकास में उसे वर्षों लग जायेंगे।

लम्बे समय तक जीव-जन्तुओं के इस तरह सुव्यवस्थित, विवेकपूर्ण और सुसंस्कृत जीवन क्रम का अध्ययन करने के सुप्रसिद्ध जीव शास्त्री हेनरी वेस्टन ने वहुत ही मार्मिक और भावपूर्ण समीक्षा प्रस्तुत की है — वे लिखते हैं प्रकृति से परे वनावटी जीवन जीने वाला इन्सान, इन नन्हें प्रकृति पुत्रों को ज्ञान के चश्मे से देखता, उनकी अपूर्णता पर दया दिखाता, उनकी निम्नतर योनि के जीव होने की विवशता पर तरस खाता है किन्तु यह उसकी भूल ही नहीं-जवर्दस्त भूल है। वह यह भूल जाता है कि वे हमारी दुनियाँ से अधिक प्राचीन और एक परिपूर्ण जगत के प्राणी हैं। वे कहीं अधिक समर्थ, सुव्यवस्थित और इन्द्रिय क्षमताओं से सम्पन्न हैं जो हम या तो खो चुके या जिन्हें प्राप्त करने में मनुष्य जाति को अभी सदियों की साधना करनी पड़ेगी। वे न तो हमसे तुच्छ हैं, न दया के भिखारी। इस धरती की शोभा और शान में वे हमारे समान सहचर और सहभागी हैं मनुष्य चाहे तो उनसे स्वयं भी वहुत कुछ सीख सकता है।

• हम लें ही नहीं योगदान दें भी

ज्ञान अनायास ही किसी को प्राप्त नहीं हो जाता। प्रयत्न, परिश्रम, इच्छा और परिस्थिति के आधार पर उसे पाया और वढ़ाया जाता है। मनुष्य को वुद्धिमान कहा जाता है, पर यह वुद्धिमत्ता सापेक्ष है। ग्रहण करने का — समझने का तन्त्र दूसरे प्राणियों को भी अवसर और साधन मिलें तो वे भी विकासोन्मुख हो सकते हैं और क्रमशः आगे वढ़ते हुए आज की अपेक्षा कहीं आगे पहुँच सकते हैं।

कुत्ते को अपनी श्रेणी के दूसरे जानवरों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक वुद्धिमान माना जाता है। उसने यह स्थिति अकस्मात ही प्राप्त नहीं करली। मुद्दतों से वह मनुष्य का साथी वनकर रहता चला आया

हैं। कुछ तो मनुष्य ने अपनी आदतों और आवश्यकताओं के अनुरूप उसे ढाला है। कुछ वह अपने अन्नदाता का अनुग्रह पाने के लिए स्वयं ढला है। संयोग और परस्पर आदान-प्रदान ने उसे इस स्थिति में पहुँचाया है। जङ्गली कुत्ते अभी भी योरोप के कई देशों में झुण्ड के झुण्ड पाये जाते हैं। नसल उनकी भी लगभग वैसी ही है पर स्वभाव में जमीन-आसमान जितना अन्तर। पालतू और जङ्गली कुत्तों की शकल भले ही मिलती-जुलती है आदतों में जरा भी साम्य नहीं होता। पालतू बिल्ली और जङ्गली बिल्ली में भी यही अन्तर मिलेगा। पालतू बिल्ली ने मनुष्य की आदतों को पहचान कर अपने को बहुत कुछ अनुकूलता के ढाँचे में ढाला है। जब कि जङ्गली बिल्ली बिलकुल जङ्गली की जङ्गली बनी हुई है। इसे शिक्षण प्रक्रिया का श्रेय कहना चाहिए।

भारत के अतिरिक्त अफ्रीका आदि देशों में ऐसे कई बालक भेड़ियों की माँद में पाये गये हैं जो उन्होंने खाये नहीं, पाल लिये। इन बालकों को जब बड़ी उम्र में पकड़ा गया तो उनमें मनुष्य जैसी कोई प्रवृत्ति न थी। वे चारों हाथ-पैरों से भेड़ियों की तरह चलते थे। कच्चे मांस के अतिरिक्त और कुछ खाते न थे, आवाज भी उनकी अपने पालन करने वालों ही जैसी थी। अन्य आदतों में भी उन्हीं के समान। ज्ञान ग्रहण का माद्दा बेशक उनमें रहा होगा पर परिस्थितियों की अनुकूलता के अभाव में उसका विकास सम्भव ही न हो सका।

दूसरी ओर अल्प विकसित पशु-पक्षी समुचित शिक्षण प्राप्त करके ऐसे करतब दिखाते हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता हैं। मदारी लोग रीछ, बन्दरों को सिखाते हैं और उनके तमाशे गली, मुहल्लों में दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते हुए अपनी जीविका कमाते हैं, सरकसों में सिखाये-सधाये शेर, हाथी, घोड़े, ऊँट, बकरे, रीछ, बन्दर आदि ऐसे कौतुक करते हैं जैसे मनुष्य भी कठिनाई से ही कर सके। इससे यही सिद्ध होता है कि शिक्षा और शिक्षक में—शिक्षा का महत्व असाधारण है। उसके द्वारा अल्प बुद्धि या बुद्धिहीन समझे जाने वाले

पशु भी वहुत कुछ कर सकते हैं जवकि बुद्धिमान समझा जाने वाला मनुष्य शिक्षण का उचित अवसर न मिलने पर मूर्ख और निकृष्ट कोटि की गन्दी आदतों वाला वना रहता है।

पशुओं को प्रशिक्षित करने, उन्हें अधिक उपयोगी और समुन्नत वनाने का प्रयत्न जहाँ भी किया गया है वहाँ आशाजनक सफलता मिली है। मस्तिष्कीय विकास के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने की मात्रा तथा अवधि में अन्तर हो सकता है पर इतना निश्चित है कि शिक्षा निरर्थक नहीं जाती। प्रयत्न किया जाय तो पालतू पशुओं को अव की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान तथा उपयोग वनाया जा सकता है और जंगली आदतों वाले जानवरों को सभ्यता, अनुशासन तथा जानकारी की दिशा में अधिक शिक्षित किया जा सकता है। लगभग हर प्राणी में ज्ञान प्राप्त कर सकने की मूल प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि उन्हें भी अपना छोटा भाई माने और वौद्धिक प्रगति की दिशा में आगे वढ़ने में सहयोग प्रदान करें।

प्रसन्नता की वात है कि इस दिशा में अव अधिक ध्यान दिया जा रहा है और विभिन्न पशु-पक्षियों को इस योग्य बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है कि वे अधिक बुद्धिमान वन सकें और मनुष्य के लिए अधिक सहायक एवं उपयोगी सिद्ध हो सकें। जर्मनी के मुन्स्टर विश्व विद्यालय के प्रोफेसर रेन्स तथा उनकी सहयोगी कुमारी उकर इस विषय में वहुत दिनों से अनुसन्धान कर रहे हैं और पशुओं को प्रशिक्षित करने की विधियों का आविष्कार करने में निरत हैं।

मलाया में पाई जाने वाली एक विशेष प्रकार की विल्ली 'सियेट' तथा 'मंगूस' नाम के एक अन्य पशु को उन लोगों ने प्रशिक्षित करने में वड़ी सफलता पाई। वे रंगों की भिन्नता तथा दूसरी कई वातों में प्रवीण हो गये।

कोहलर ने पक्षियों को गिनती सिखाने तथा वस्तुओं की भिन्नता स्मरण रखने में शिक्षित कर लिया। वे शब्दों का भावार्थ भी

समझने लगे ।

प्रोफेसर सन्स की छात्रा 'सियेट' निरन्तर रुचि पूर्वक पढ़ती रही और करीव ३० प्रकार के पाठ पढ़कर उत्तीर्ण होती रही। उससे ३४ हजार बार प्रयोग कराये गये जिसमें वह ७० से लेकर ८४ प्रतिशत तक सफल होती रही। प्रोफेसर महोदय ने अपनी पुस्तक में उपरोक्त बिल्ली को पढ़ाने और उसकी भूल सुधारने की विधियों पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

हाथी को दिखाई देने वाली वस्तु और सुनाई देने वाली ध्वनियों का सही तरीके से विश्लेषण करना नहीं आता पर वह इशारे समझने में बहुत प्रवीण है। संकेतों के आधार पर उसे भविष्य में बहुत आगे तक प्रशिक्षित किया जा सकेगा और उसे मनुष्य का उपयोगी साथी, सहायक बनाया जा सकेगा। बन्दर के बारे में भी ऐसी ही आशा की जा सकती है। उसकी चञ्चल प्रकृति और अस्थिर मति को सुधारा जा सकता है और मानव परिवार में कुत्ते की तरह, उपयोगी जीव की तरह सम्मिलित किया जा सकता है।

कुत्ते का भौंकना सुनकर उसका मालिक यह आसानी से बता सकता है कि उसके चिल्लाने का मतलब क्या है। भूख, प्यास, थकावट, शीत, गुस्सा, चेतावनी आदि कारणों को लेकर भौंकने के स्वर तथा स्तर में जो अन्तर रहता है उसे पहचान लेना कुछ कठिन नहीं है। कुत्ते की भाषा मनुष्य समझता हो सो बात ही नहीं है। कुत्ते भी मनुष्य की भाषा समझ सकते हैं। अभ्यास कराने पर उन्हें १०० शब्दों तक का ज्ञान कराया जा सकता है और उन आदर्शों के आधार पर उन्हें काम करने के लिए अभ्यस्त किया जा सकता है। ६० समझने तक में तो अभी भी कई कुत्ते सफलता प्राप्त कर चुके हैं। शब्द के साथ-साथ उसके कहने का विशेष ढंग और भाव मुद्रा का स्वरूप मालिक को भी सीखना पड़ता है। कानों से बहरे लोग सामने वाले के होठों का सञ्चालन तथा मुखाकृति का उतार-चढ़ाव देखकर लगभग आधी बात पकड़ लेते हैं।

उसी प्रकार कुत्ते को आदेश देते समय, मात्र शब्दों का उच्चारण ही काफी नहीं वरन् मालिक को अपना लहजा, अदा और तरीका भी शब्द के साथ मिश्रित करके आदेश की एक नई शैली का आविष्कार करना पड़ता है। कुत्ते को ऐसी ही भाव और शब्द मिश्रत भाषा से ही आज्ञानुवर्ती वनाया जा सकता है।

कुत्ते रास्ता चलते वीच-वीच में पेड़-पौधे, खम्भे आदि पर वार-वार पेशाव करते चलते देखे गये हैं। इस आधार पर वे अन्य साथियों को उस मार्ग से गुजरने की सूचना देते हैं। यह मूत्र गन्ध उस क्षेत्र पर उस कुत्ते के आधिपत्य की सूचना देती है और लौटते समय उसी रास्ते का संकेत देती है।

लन्दन चिड़ियाघर के अधिकारी डा० डंसमंड मारिस का कथन है कि कुत्ते का दुम हिलाना, उसके मनोभावों के प्रकटीकरण से सम्वन्धित है। विभिन्न मनः स्थितियों में उसकी पूँछ अलग-अलग ढङ्ग से हिलती है। उसे समझा जा सके तो स्काउटों की 'झण्डी संकेत पद्धति' के अनुसार कुत्ते के मनोभावों को समझा जा सकता है।

कुत्ते में एक अद्‌भुत क्षमता निकटवर्ती . भविष्य ज्ञान की है। वे ऋतु परिवर्तन की पूर्व सूचना दे सकते हैं और कई वार तो दैवी विपत्तियों की पूर्व सूचना भी देते हैं। कुछ समय पूर्व लिन माडल के डेवन प्रदेश में विनाशकारी वाढ़ आई थी। जिसमें भारी धन-जन की हानि हुई। दुर्घटना से ४ घण्टे पूर्व सारे नगर के कुत्तों ने इकट्ठे होकर इस वुरी तरह रोना शुरू किया कि लोग दंग रह गये और तंग आ गये। जव वाढ़ आ धमकी तव समझा गया कि कुत्तों का इस प्रकार सामूहिक रूप से रोना विपत्ति की पूर्व सूचना के लिए था।

विल्लियाँ भी कुत्तों से पीछे नहीं। मस्तिष्कीय सक्षमता की दृष्टि से वे कई वातों में और भी आगे हैं। उन्हें सिखा-पढ़ा कर उपयोगी वनाया जाना अन्य छोटे पशुओं की अपेक्षा अधिक सरल है।

पशुओं में ज्ञान के मूलतत्व ही विद्यमान नहीं हैं वरन् उनमें भावों

की अभिव्यक्ति का भी माद्दा है। टूटी-फूटी उनकी भाषा भी है, जिसके आधार पर वे अपनी जाति वालों के साथ विचार विनिमय कर सकते हैं। इस भाषा को और अधिक विकसित किया जा सकता है। इस विकास के आधार पर मनुष्य के साथ अन्य प्राणियों के विचार विनियम का द्वार भी खुल सकता है।

वैटजेल नामक एक प्राणि प्रेमी ने सन् १८०१ में कुत्ते, विल्ली तथा कई पक्षियों की भाषा का एक शब्द कोष वनाया था। फ्रांस निवासी द्यूपो नेमर्स ने कौओं की आवाज पर एक पुस्तक प्रकाशित की थी। योरोप के कई विश्वविद्यालय इस सम्वन्ध में अपना अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं इनमें केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का एक 'शब्द कोष' तो लगभग तैयार भी हो चला है।

'चिपेंजी इंटेली जेन्स एण्ड इटज वोकल एक्स प्रेशन' पुस्तक लेखक द्वय श्री ईयर्कस और श्रीमती लर्नेड ने चिपेञ्जी वन्दरों की लगभग ३० ध्वनियों का संग्रह और विश्लेषण करके एक प्रकार से उनका भाषा विज्ञान ही रच दिया है।

हर हर मन फ्रेवुर्ग ने अपनी पुस्तक 'आउट आफ अफ्रीका' में ऐसे अनेक संस्मरण लिखे हैं जिसमें गोरिल्ला और मनुष्य के बीच वात-चीत-भावों का आदान-प्रदान और सहयोग संघर्ष का विस्तृत परिचय मिलता है। साधारणतया जानवर अपनी ही जाति के लोगों से विचार विनिमय कर पाते हैं पर यदि सिखाया जाय तो न केवल मनुष्य के साथ हिल मिल सकते हैं वरन् एक जाति का दूसरी जाति वाले अन्य जीवों के साथ भी व्यवहार —सम्पर्क वनाया और वढ़ाया जा सकता है।

जानवरों का भाषा कोष तैयार करने में कई संस्थाओं ने वहुत काम किया है और कितने ही अन्वेषक निरत हैं। केम्ब्रिज की 'दी एशियाटिक प्राइमेट एक्स पेडीशन' संस्था ने इस सम्ब्रन्ध में वहुत खोज की है। इस संस्था के शोधकर्ता विश्व भर में घूमे हैं और विभिन्न पशुओं की आवाजें रिकार्ड की हैं। मोटे तौर पर यह आवाज कम होती हैं पर वारीकी से

उनके भेद प्रभेद करने पर वे इतनी अधिक हो जाती हैं कि उनके सहारे उन जीवों के दैनिक जीवन की पारस्परिक सहयोग के लिए आवश्यक बहुत सी जरूरतें पूरी हो सकें। पैरिस के प्रो० चेरोन्ड और अमेरिका के डा० गार्नर ने अपनी जिन्दगी का अधिकांश भाग इसी शोध कार्य में लगाया है।

बन्दरों की भाव-भंगिमा उनकी मनः-स्थिति को अच्छी तरह प्रकट करती है। जरा गम्भीरता से उसके चेहरे पर दृष्टि जमाई जाय तो सहज ही पता चल जायगा कि वह इस समय किस 'मूड' में है। उसके डरने, प्रसन्न होने, क्रोध करने, थक जाने, दुःख व्यक्त करने, साथियों को बुलाने आदि के स्वर ही नहीं भाव भी होते हैं जिन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है।

चिपेंजी बन्दर तो हँस भी सकता है। बच्चों के वियोग में चिपेंजी मादा रोती देखी गई है। नीचे वाला होट आगे निकला हुआ देखकर— आँखों को ढके बैठी हुई मादा चिपेंजी को शोकग्रस्त समझा जा सकता है। इस स्थिति में उससे सहानुभूति प्रकट करने दूसरे साथी भी इकट्ठे हो जाते हैं और संवेदना प्रकट करते हैं।

गोरिल्ला अपने क्रोध की अच्छी अभिव्यक्ति कर सकता है। गिब्बन बन्दर सवेरे ही उठकर शोर करते हैं जिसका मतलब है कि यह क्षेत्र हमारा है। कोई दूसरे इस क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न न करें।

अन्य प्राणियों की उपेक्षा के गर्त में पड़ा रहने देने या उनके शोषण करते रहने में मनुष्यता का गौरव बढ़ता नहीं। अपनी प्रगति से ही सन्तुष्ट न रहकर हमारा यह भी प्रयत्न होना चाहिए कि अन्य प्राणियों के बौद्धिक उत्कर्ष में समुचित ध्यान दें और सहयोग प्रदान करें।

बुद्धिमान होने के कारण मनुष्य सबसे बड़ा नहीं है !



मनुष्य को परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा गया है। परमात्मा ने उसमें वे सभी विशेषताएँ और क्षमताएँ समाहित कर दी हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि ईश्वर ने अपने इस प्रियपुत्र पर अपना विशेष प्यार दुलार लुटाया। स्थूल दृष्टि से देखने पर यही दिखाई देता है कि मनुष्य को सर्वसमर्थ शरीर तन्त्र के अलावा बौद्धिक सामर्थ्य का विशेष अनुदान मिला है। लेकिन मनुष्य को प्राप्त हुई शारीरिक सामर्थ्य से अन्य प्राणियों की तुलना की जाय तो कितने ही प्राणी उससे अधिक बलवान और शक्तिशाली सिद्ध होंगे। बौद्धिक सामर्थ्य और सूझबूझ की तुलना में चींटीं, कौआ, खरगोश, कुत्ता, बिल्ली आदि कितने ही प्राणी मनुष्य से इक्कीस सिद्ध होंगे।

कहा जाय कि इन सब प्राणियों में सीखने की क्षमता नहीं होती। यह सोचना भी गलत है क्योंकि शरीर रचना में उससे समानता रखने वाले प्राणी उससे अधिक अच्छी तरह सीख समझ सकते हैं। मनुष्य की

शरीर संरचना और बौद्धिक सामर्थ्य से निकटतम अनुरूपता रखने वाला प्राणी खोजा जाय तो वह लंगूर ही होगा। लंगूरों की प्रायः तीन श्रेणियाँ बतायी जाती हैं एक –ओरगुंटान, दूसरी – गोरिल्ला और तीसरी श्रेणी में चिपांजी आते हैं।

इनमें से भी ओरगुंटान श्रेणी के लँगूर कम होते जा रहे हैं। अब ये केवल इण्डोनेशिया के जंगलों में ही मिलते हैं और वन्दरों की तरह वृक्षों पर एक टहनी से दूसरी टहनी पर कूदते हैं। इनकी भुजाएँ अन्य लंगूरों की तुला में अधिक सशक्त होती हैं तथा इनके पाँव अन्य लंगूरों की अपेक्षा छोटे और कमजोर। ओरगुण्टान को पकड़कर यदि किसी पिंजड़े में वन्द कर दिया जाय तो चुपचाप उदास मुद्रा में वैठ जाते हैं। जैसे ये अपनी बंधक स्थिति से क्षुब्ध हों और उसकी पीड़ा छटपटाहट अनुभव करते हों।

ओरगुंटान से कुछ अधिक विकसित लंगूर है गोरिल्ला। ये प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। सीधे खड़े होने पर ५ फीट के दिखाई देते हैं। अफ्रीका में पाये जाने वाले गोरिल्लों में से कुछ का वजन तो दो क्विटल तक है। लेकिन ये कभी-कभी ही सीधे खड़े होते हैं।

मनुष्य के सर्वाधिक समीप लंगूर है चिपांजी। चिपांजी और मनुष्य के रक्त में इतनी समानता पाई जाती है कि यह आदमी का रक्त है अथवा चिपांजी का। यही नहीं चिपांजियों को भी मनुष्य में होने वाले रोगों यथा–यस्पिण्ड पोलियो जैसी वीमारियों का शिकार होता देखा गया है।

चिपांजी को एक भाषा ही नहीं मिली है अन्यथा कई मामलों में यह मनुष्य की न केवल वरावरी करता है, वरन् उसे पीछे भी छोड़ देता है। चिपांजी जंगल में अपने आस-पास के वायुमण्डल के सम्बन्ध में वहुत अधिक सतर्क रहते हैं। जंगल में जव ये एक दूसरे को पुकारने के लिए किल्कारी करते हैं तो मनुष्य के लिए उसकी आवाज कान फाड़ देने वाली सिद्ध होती है। जब इन्हें पकड़कर कहीं रख लिया जाता है और ये नये व्यक्तियों को देखते हैं तो इतनी जोर से चीखते हैं कि इनके

रखवालों को कनटोप पहन लेना पड़ता है।

चिपांजी मनुष्य के हावभाव और सिखाई जाने वाली वातों का वहुत शीघ्र अनुकरण करने लगते हैं। उनकी प्रकृति का अध्ययन करने वालों में गार्डनर तथा उनकी पत्नी वीट्राइस प्रमुख रही हैं। ११ वर्ष पूर्व गार्डनर दम्पत्ति ने एक आठ मास के चिपांजी को सिखाना आरम्भ किया। चिपांजी को वाकायदा नाम भी दिया गया— वाशोई। गार्डनर दम्पत्ति ने वाशोई को अमेरिका सांकेतिक भाषा सिखाई जो प्रायः गूंगों, वहरों को सिखाई जाती है। जव वह चिपांजी ५ वर्ष का हो गया तो उसे इस भाषा के १३२ संकेतों का अच्छी तरह अभ्यास हो गया।

वाशोई के अलावा गार्डनर दम्पत्ति ने ४ और चिपांजी पाले जिनमें से एक का नाम है भोजा। भोजा अव चित्र भी वनाने लगा है। उसने अपनी प्रतिभा का प्रथम परिचय श्यामपट पर एक चाक से दिया। भोजा प्रायः अपने मानव सम्वन्धियों को चित्र वनाते हुए देखता रहता था। एक दिन भोजा को न जाने क्या सूझी कि उसने चाक उठाया और लगा ब्लैकवोर्ड पर एक डिजायन वनाने। जव यह डिजायन वना चुका तो उसने संकेत दिया कि मेरा काम खत्म हो गया है।

यह पूछा जाने पर कि यह क्या है तो भोजा ने सांकेतिक भाषा में उत्तर दिया— यह पक्षी है।

सिखाने पर कोई भी व्यक्ति कुछ भी समझ सीख सकता है, परन्तु उसमें जटिलता के अनुसार सीखने समझने की सामर्थ्य में भी अन्तर आ जाता है। उदाहरण के लिए कम्प्यूटर की कार्य प्रणाली इतनी जटिल है कि उसे चलाना हर किसी के वस की वात नहीं होती, परन्तु एक तीन वर्षीय चिपांजी लाना कम्प्यूटर चलाने में भी समर्थ है। उसकी विशेषता यह है कि वह अनुसन्धान कर्त्ताओं के प्रश्नों का उत्तर मशीन से मनुष्य चालकों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता और कुशलता से उत्तर देता है।

इन घटनाओं को अपवाद भी कहा जाय तो रोजमर्रा के जीवन में

चौराहों पर मजमा लगाकर मदारी के इशारों पर खेल दिखा रहे वन्दरों को देखा जा सकता है। अपने मास्टर का इशारा पाकर वे वन्दर कैसे-कैसे आश्चर्यजनक करतव कर लेते हैं—देखते ही वनता है। भालू भी वन्दरों की ही तरह कोई आदत या अभ्यास को तुरन्त ग्रहण कर लेता है। सरकस में तो घोड़े, शेर, वकरी, हाथी तक मनुष्यों से न हो सकने वाले काम सीख लेते हैं और अपने मास्टर के निर्देशन में खेल दिखाकर लोगों को चमत्कृत कर देते हैं।

कहा जा सकता है कि किसी कार्य का अभ्यास करना या वार-वार दोहराकर उसे सीख लेना बुद्धिमत्ता नहीं है। बुद्धिमानी का अर्थ मौलिक सूझवूझ है जो किसी भी अवसर या घटना विशेष पर तुरन्त निर्णय लेकर अमल में ले आये। इस मौलिक सूझवूझ को प्रत्युत्पन्नमति भी कहा जा सकता है। अन्य प्राणियों में प्रत्युत्पन्नमति नहीं होती। जैसे किसी तोते को रटा दिया जाय कि "डर मत डर मत।" तोता हमेशा यही दोहराता रहे "डर मत-डर मत" परन्तु विल्ली दिखाई देते ही तोता टें-टें करने लगता है! उस समय न इससे उड़ते वनता है न 'डर मत डर मत' का पाठ करते।

आकस्मिक घटनाओं में फँसकर तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता तो मनुष्य में भी वहुत कम होती है। शौर्य, पराक्रम और साहस पर घण्टों भाषण देने वाले लोग स्वयं संकट के समय घवड़ाकर भागते या हड़वड़ाहट में उस संकट को और गम्भीर वनाते देखे गये हैं। वस्तुतः मनुष्य में जो कुछ बुद्धिमत्ता दिखाई देती है, इसका अस्सी प्रतिशत भाग सीखा और दोहराया गया भर होता है। वार-वार अभ्यास से वह वात उसके दिमाग में डाल दी गयी भर होती है। उदाहरण के लिए चार-पाँच वर्ष का होते ही वच्चे को अक्षर ज्ञान कराया जाता है; पाठों को दोहराना और अक्षरों को पहचानना सिखाया जाता है। जो भाषा वह बचपन में सीख लेता है वह उसे आजीवन याद रहती है। इसी प्रकार आदतें, स्वभाव और प्रकृति भी वहुत कुछ दूसरों के देखा-देखी सीखी जाती हैं।

जिसे मौलिक बुद्धि कहा जा सके, वह क्षमता बहुत कम लोगों में होती है क्योंकि मनुष्य जो कुछ भी सीखता, समझता और उस आधार पर सभ्य, समझदार दिखाई देता है वह समाज में रहने के कारण ही है। जिस वातावरण में वह रहता है, वह वातावरण उसे अनुरूप बनने के लिये प्रेरित करता है। बचपन से ही उसे सीखना सिखाया जाता है इसलिए वह आगे चलकर बिना सिखाये भी बहुत कुछ सीख सकता है।

यही बात अन्य जीव-जन्तुओं के बारे में भी देखी जा सकती है। जीवशास्त्र के पन्ने पलटते चलिये, जीव-जन्तुओं का अध्ययन करते जाइये तो एक से एक बढ़कर ऐसे उदाहरण मिलते जायेंगे जो मनुष्य की बौद्धिक क्षमता को लजाते हैं।

न विद्यालय न शास्त्र

सृष्टि के अन्य जीवों में मनुष्य की सैकड़ों विशेषताएँ हैं। वह सफाई पसन्द करता है, करना भी चाहिए क्योंकि जो साफ-सुथरा रहता है, गन्दगी से बचता है, वही केवल स्वस्थ व नीरोग रह सकता है। स्वास्थ्य विज्ञान की लम्बी जानकारियों के आधार पर यह नियम बनाया गया है, पर मधुमक्खी के पास इस तरह का ज्ञान देने वाला कोई विद्यालय नहीं, स्वास्थ्य के नियमों का उसे पता नहीं, रोग कौन-कौन से होते हैं इसका उसे कोई ज्ञान नहीं भी फिर मधुमक्खी के उपनिवेश में सफाई का उतना हीं ध्यान रखा जाता है, जितना रानी की सुरक्षा का। कोई मधुमक्खी मर जाये तो उसके सड़ने-गलने और बदबू फैलाने से पूर्व ही मधुमक्खियाँ उसके शव को छत्ते से १५-२० गज की दूरी पर बाहर फेंक आती हैं। उनमें एक क्रम रहता है, प्रतिदिन नियत समय पर मक्खियाँ उड़ान करती हैं और छत्ते से बाहर टट्टी कर आती हैं। इसका अर्थ है कि यदि मकान की सफाई न रखी गई, उसमें गन्दगी फैलने दी गई तो उससे सारी कालौनी में महामारी फैल सकती है। यह ज्ञान शरीर का नहीं, उस आत्मा का है, जो मनुष्य और मधुमक्खी दोनों में एक समान है।

श्री रक्षपाल लिखित पुस्तक "कीटों में सामाजिक जीवन" में बताया गया है कि यदि कोई चूहा किसी दीमक के किले में घुस जाता है, तो रक्षक दीमक उस पर अपने डङ्कों का प्रहार करके उसे मार डालते हैं। संगठित आक्रमण और प्रकृतिदत्त साधनों के उपयोग से वे शत्रु पर विजय पा जाते हैं, पर बेचारे कण-कण के कीट उतने वजन के चूहे के शव को बाहर किस तरह करें। जब तक वह सड़-गल कर समाप्त हो तब तक तो उनके कमरे में इतनी बदबू फैल सकती है, जो उन सबका ही नाश कर दे, इसलिए वे दूसरी युक्ति से काम लेते और मनुष्य से अधिक चतुरता का परिचय देते हैं। लोग तो जंगल—टट्टी जाते हैं और टट्टी खुली छोड़ आते हैं, जिससे वातावरण दूषित होता है, उसे गड्ढा खोद कर टट्टी करने और उसमें मिट्टी पटक देना भी लज्जास्पद लगता है, इस दृष्टि से अधिक बुद्धिमान दीमक हैं, क्योंकि वे तुरन्त एक प्रकार का द्रव प्रोपोसिल बनाते हैं और उसकी मोटी परत वाली वार्निश उसके शरीर में कर देते हैं, इससे उसकी गन्दगी का एक झोंका भी बाहर नहीं जा पाता। एक बार कपूर की डेली इनके महल में फेंककर देखा गया। जितनी देर में कपूर की गन्ध उपनिवेश में फैले दीमकों ने उसे इस द्रव से कीलित कर दिया।

मनुष्य बड़ा भारी इन्जीनियर है, भाखड़ा से लेकर चन्द्र रौकेट तक की डिजाईनिंग में उसने जो बुद्धि खर्च की है, उसे देखकर लगता है, यह दूसरा परमात्मा है, पर यदि यही योग्यता किसी तुच्छ प्राणी में हो तो उसे भी परमात्मा का अंश ही कहा जायगा। जीव-वैज्ञानिक डा० बेल्ट ने हिमालय की ४००० फुट ऊँची एक चोटी पर चढ़कर एक ऐसे चींटी परिवार का अध्ययन किया जो गृह-निर्माण कर रहा था। जहाँ वे घर बना रही थीं, वह एक नदी का कगार था। बिल से निकाली हुई मिट्टी नीचे गिर जाती थी और इस कारण मकान का सहन उम्दा नहीं बन पा रहा था। अंत में इस स्थिति से निपटने का काम कुछ विशेषज्ञ चींटियों को सौंपा गया। उन्होंने उस स्थान का विधिवत् निरीक्षण कर

एक योजना बनाई। उस योजना के अनुसार मजदूर चींटियों को भीतर के काम से हटा कर पहले छोटी-छोटी कंकड़ियाँ बीन कर लाने का आदेश दिया गया। वह सब कंकड़ बीनकर लाईं और इस तरह पहले एक मजबूत पथ बना दिया गया, तब आगे का काम प्रारम्भ हुआ। अब मिट्टी को लुढ़कने की कोई गुंजाइश नहीं रही।

जीव-जन्तुओं की विलक्षणता मनुष्योचित—

बुद्धि और ज्ञान-शक्ति की दृष्टि से मनुष्य की अन्य जीव-जन्तुओं से कोई तुलना नहीं की जा सकती, फिर भी अनेक जीव-जन्तुओं में ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं, जिनकी समता कोई सामान्य दर्जे का मनुष्य नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए कुत्ते की सूँघने की, गिद्ध की देखने की, शेर की उछलने की, मधु-मक्खियों की सामूहिकता की शक्तियों का उदाहरण मनुष्य कभी उपस्थित नहीं कर सका। और भी अनेक जीव आहार प्राप्त करने या आत्म-रक्षा के लिए ऐसी-ऐसी विधियों से काम लेते हैं, जो आश्चर्यजनक जान पड़ती हैं। साथ ही अनेक पशु समय-समय पर ऐसी सूझ-बूझ का परिचय देते हैं, जिसे देखकर उनको कभी 'जड़ पदार्थ' की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। अनेक अन्वेषण करने वालों का तो यह कथन है कि मनुष्य ने कितनी ही बातों का ज्ञान जीव-जन्तुओं से ही प्राप्त किया है।

बुनने वाली चिड़ियाँ —

बुनने के कार्य में कई तरह की चिड़ियों ने बड़ी उन्नति की है। हमारे देश में इसके लिए 'बया' पक्षी का घौंसला प्रसिद्ध है। वह घास के तिनकों को ऐसी कारीगरी से बुनती है कि उसका घौंसला एक दर्शनीय वस्तु बन जाता है। उसके भीतर न तो पानी जाता है और न कोई शत्रु साँप, बन्दर, कौआ आदि भीतर घुसकर अण्डों या बच्चों को कुछ हानि पहुँचा सकता है।

इससे मिलती-जुलती एक चिड़िया अमेरिका में भी होती है, जो अपना घोंसला बड़ा सुन्दर बनाती है। कितने ही लोग इनकी कारीगरी

देखने के लिए रङ्ग-बिरङ्गा ऊन उनके निवास स्थान के पास रख देते हैं। चिड़ियाँ इसी का प्रयोग अपने घोंसले वनाने में करती हैं। जव ये रङ्ग-विरंगे घोंसले पेड़ों में लटकते हुए दिखाई पड़ते हैं तो उनकी शोभा विचित्र दिखाई देती है। उनमें अनायास ही ऐसे अद्भुत और आकर्षक डिजायन वन जाते हैं कि फिर स्त्रियाँ और पुरुष उनकी नकल करने लगते हैं। भारतवर्ष में एक 'दर्जी चिड़िया' भी पाई जाती है। यह अपने घोंसले को केवल वुनती ही नहीं वरन् लटकती हुई पत्तियों को घास का प्रयोग करके इस प्रकार सीं देती है, जैसे दो फीतों के वीच कोई झूला (हिण्डोला) लटक रहा हो। इसी लटकते हुए 'कटोरे' के वीच उसका घोंसला टिका रहता है।

बिजली –

कई प्रकार की मछलियों ने अपने शरीर में विजली के वैट्रीनुमा अङ्ग विकसित करके उनके द्वारा आत्म-रक्षा और आहार संग्रह की विधि निकाली है अमेरिका की अमेजन नदी में पाई जाने वाली 'एल' मछली की पूंछ वहुत बड़ी होती है। उसमें बिजली की वैट्री के तीन समूह होते हैं। इसके द्वारा यह मछली कई सौ 'वोल्ट' की ताकत का धक्का मार सकती है, जिससे कभी-कभी घोड़े और मनुष्य भी गिर कर पानी में डूब जाते हैं। इस विजली का प्रयोग वह सम्वाद प्रेपक तार के रूप में भी करती है। क्योंकि जैसे ही एक मछली किसी शिकार पर आघात करती है, वैसे ही उसके सभी दूरवर्ती साथियों को उसका पता लग जाता है और दौड़कर उसी स्थान पर आ जाती हैं।

अरब समुद्र और नील नदी में 'कैट फिश' (वल्ली मछली) नाम की एक भारी और दो फीट के लगभग लम्बी मछली होती है, जिसका रङ्ग पीला होता है और उस पर भूरे धब्बे पड़े होते हैं। इसका सारा शरीर एक लिफाफे की तरह बिजली के अङ्ग से ढका रहता है। इसमें भी काफी शक्ति होती है और प्रायः आपस में लड़कर एक दूसरे पर विद्युत-शक्ति द्वारा आघात पहुँचाया करती हैं।

एक और मछली 'टारपेडो' नाम की होती है, जिसमें हल्की विद्युत-शक्ति होती है और जो काफी संख्या में सारे गरम समुद्रों में पाई जाती हैं। यह कोमल मछलियों को बिजली का धक्का देकर पकड़ लेती है। पुराने जमाने में हकीम लोग इससे गठिया रोग का इलाज करने का काम लेते थे। इसके लिए रोगी को मछली के ऊपर तब तक खड़ा रहना पड़ता था, जब तक के लिए चिकित्सक आज्ञा देता था या रोगी बिजली के झटके को सहन कर सकता था।

मानव-इतिहास में सुरङ्गों का भी बड़ा महत्व है। शत्रुओं से बचने अथवा बहुमूल्य वस्तुओं के भण्डार आदि को गुप्त रखने के लिए पुराने जमाने में सुरंगें खोदी जाती थीं। भारत के कितने ही प्राचीन किलों में सुरंगें देखने में आती हैं, जिनके भीतर अब भय के कारण कोई नहीं घुसता। इससे उनके विषय में तरह-तरह के किस्से सुनने में आते रहते हैं। पर इनमें से अधिकांश किसी घेरे या आक्रमण के समय बाहर निकलने के गुप्त मार्ग के रूप में ही प्रयुक्त होती थीं।

इन सुरङ्गों को बनाने का विचार सम्भवतः मनुष्यों ने जीव-जन्तुओं से ही ग्रहण किया है, क्योंकि वे आत्म-रक्षा अथवा आहार की खोज में सुरंगें बनाया करते हैं।

सुरङ्ग बनाने वाले कीड़ों में केंचुआ बहुत प्रसिद्ध है। वह अपने एक सिरे से भूमि में प्रवेश करता है और जो कुछ मिलता है, उसे निगल कर दूसरे सिरे से मिट्टी के रूप में ही बाहर फेंकता जाता है। इस प्रकार से अपना निर्वाह करते हैं और साथ ही नीचे की मिट्टी को ऊपर लाकर छोटे पेड़-पौधों की वृद्धि में भी सहायक होते हैं। कहते हैं कि इस प्रकार केंचुये किसी बगीचे की एक एकड़ भूमि की ४०० मन मिट्टी को एक वर्ष के भीतर नीचे से ऊपर ले आते हैं। और भी कितने ही छोटे कीड़े इसी प्रकार धरती में छेद करके नीचे की मिट्टी को ऊपर लाया करते हैं।

इन कीड़ों के अतिरिक्त न्यौला, चूहे, छछूंदर, झींगुर और साही,

स्यार आदि जङ्गली पशु भी सुरङ्ग खोदते रहते हैं। इन सब प्राणियों का शरीर लम्बाई में अधिक होता है, जिससे उन्हें खोदने के काम में सहायता मिलती है। अफ्रीका का चींटी खाने वाला रीछ तो अपने पैरों से सुरङ्ग बनाने में इतनी तेजी से मिट्टी काटता है, जितना कि दो मजदूर फावड़ा या गैंती लेकर भी नहीं काट सकते।

जीव-जन्तु एक प्रकार के जड़-पदार्थ हैं, इस मान्यता का खण्डन उन अनेक पशुओं की बुद्धिमानी से होता है, जो वे समय-समय पर प्रकट करते हैं। कुत्तों की स्वामिभक्ति और चोरों का पीछा करके गाड़े हुए धन का पता लगा आना और फिर स्वामी को वहाँ ले जाना आदि घटनाओं के सच्चे किस्से आमतौर से प्रसिद्ध हैं। वन्दर भी अपने किसी साथी को वचाने के लिए वहुत समझदारी का परिचय दिया करते हैं। कहते हैं कि वन्दर का वच्चा कुएँ में गिर गया तो कई वन्दर एक दूसरे के पैर पकड़कर कुएँ में लटक गये और वच्चा उन पर चढ़ कर वाहर आ गया। घोड़ों की वुद्धिमानी और स्वामिभक्ति की कथाएँ भी प्रसिद्ध हैं। जव एक सेनाध्यक्ष वहुत घायल होकर रणक्षेत्र में गिर गया तो उसका घोड़ा उसके कमरवन्द को मुँह में पकड़कर घर तक उठा लाया जो दस-पन्द्रह मील दूर था।

भिन्न-भिन्न जाति के पशुओं में पारस्परिक प्रेम के समाचार प्रायः सामयिक पत्रों में छपा करते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि उनमें प्रेम की भावना और एक दूसरे के प्रति सहानुभूति भी होती है। एक विलायती अखवार में एक मेंमना तथा नर वतख की दोस्ती का वर्णन छपा था, जो कभी अलग नहीं होते थे। इसी तरह एक विल्ली तथा डौमकौवे में घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। कौआ अपनी शरारती आदत के अनुसार सोने की इच्छुक विल्ली की पूँछ मरोड़कर जगा देता था। तव थोड़ी देर के लिए दोनों में खट-पट भी हो जाती थी।

स्मरण-शक्ति और वदला लेने की घटनाओं से भी पशुओं के मानसिक विकास का कुछ पता चलता है। कुछ वर्ष पहले अखवारों में

एक हाथी की घटना इस प्रकार छपी थी —

"धुवरी राज्य में एक हाथी को खीला सूत्रधार नामक महावत ने पीटा था। इसके कुछ समय बाद खीला ने अन्यत्र नौकरी कर ली और वह एक नये हाथी का महावत बनाया गया। कई वर्ष बाद सँयोग से खीला का नया हाथी और वह हाथी जिसे उसने पीटा था, काम पर से साथ-साथ वापिस आ रहे थे। दोनों महावत परस्पर परिचित थे और मार्ग में उनमें से एक ने हाथी को जरा ठहरा कर तम्बाकू की चिलम अपने साथी को दी। उसी समय मौका देखकर पीटे गये हाथी ने एकाएक सूँड़ उठाकर खीला को नीचे खींच लिया और महावत द्वारा बहुत रोके जाने पर भी तुरन्त ही कुचल कर मार डाला।"

कानपुर में चैतू नामक गड़रिया ने किसी बात पर एक गाय को बहुत मारा। गाय ने इस घटना को स्मरण रखा और कई महीने बाद जब उसे अवसर मिला उसने चैतू को गिराकर सींगों से खूब मारा।

प्रेम और स्नेह 'सद्भाव भी'—

सम्पर्क में आये मनुष्यों, जीव-जन्तुओं को स्मरण रखने व समय आने पर उनसे वैसा व्यवहार करने में सचमुच ही जीव-जन्तुओं की कोई समझ है। इतना ही नहीं वे प्रेम करने और स्नेह 'सद्भाव रखने में मनुष्य से पीछे नहीं है। अन्य जीव भी प्रेम करते हैं, प्रेम ही नहीं, शुद्ध और नितान्त पवित्र प्रेम। उदाहरण के लिए कुछ गर्म देशों के समुद्र में मछली की सी आकृति का एक जीव पाया जाता है, उसे मनाती कहते हैं। उसे अपने बच्चे से इतना प्यार होता है कि कैसी भी परिस्थिति में वह उसे अपने से अलग नहीं करती, उसके शरीर में दो झिल्लियाँ होती हैं, जो हाथों का काम देती हैं, इनसे ही वह अपने बच्चे को छाती से चिपकाये रहती है और उसे हमेशा दूध पिलाती रहती है। कभी-कभी इसका बच्चा छूट जाता है तो वह ऐसे रँभाती है जैसे लवाई (हाल की ब्याई) गाय अपने बच्चे के लिये रँभाती है। सम्भवतः इसी गुण के कारण उसे समुद्री गाय (सी काऊ) भी कहते हैं। १ टन वजन से भी भारी

मनाती संसार के दुर्लभ जीवों में से है, इसीलिए उसकी रक्षा के लिए कड़े नियम बनाये गये हैं, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत इसे अवध्य कर दिया गया है।

मनुष्य अपने आपको सामाजिक प्राणी कहला सकता है तो छोटे-छोटे जीव कम सामाजिक नहीं। यह केवल प्राकृतिक प्रेरणा से ही नहीं, उनकी बुद्धिमत्ता से भी होता है।

उत्तरी योरोप का बीवर जन्तु इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। यह बड़ा बुद्धिमान जीव है, पानी में बाँध बनाकर रहता है। बाँध बाँधने में तो इन्जीनियर भी चकराते हैं, फिर उन्हें भी परेशान होना चाहिए पर नहीं। कई बीवर मिलकर योजना बनाते हैं, एक लकड़ी इकट्ठा करता है तो दूसरे छोटी-छोटी डालियाँ, कुछ मिट्टी ढोते हैं, कुछ खोदते हैं। पत्थरों के भार से ये लट्ठों को पानी में डुबा देते हैं और फिर उन पर मिट्टी थोप कर अपने लिए कमरे बना लेते हैं। एक-दूसरे से मिलते-जुलते रहने के लिऐ यह कमरों में दरवाजे भी रखते हैं। एक इन्जीनियर जैसी व्यवस्था यह सब मिलकर कर लेते हैं। चींटी, मधुमक्खी, दीमक, मनाती, बीवर आदि के शरीर में अवतरण, निश्चित रूप से अज्ञान, अन्धकार और अचेतनता में जन्म लेना है, पर यह एक विलक्षण सत्य है कि इस नन्हें से शरीर में रहने वाली नन्हीं सी चेतना में भी वह सारी क्षमताएं भरी पड़ी हैं, जो किसी भी योग्य मनुष्य में सम्भव हैं। शरीर जीवन साधनों के यन्त्र हैं और प्रत्येक जीव को उसकी प्रकृति और स्वभाव के अनुरूप मिले होते हैं, यह मनुष्य शरीर की ही विशेषता है कि उसमें प्रकृति के परम्परागत विषयों को भी विजय करने की क्षमता है, यदि वह ऐसा न करके अन्य जीवों का सा ही निम्नगामी जीवन जीता है और अपने स्वभाव को ऊर्ध्वमुखी नहीं बनाता तो निश्चित रूप से उसे भी अज्ञान, अन्धकार और अचेतना में भटकता हुआ एक सामान्य गुण मात्र समझना चाहिए, जबकि वह एक शाश्वत सर्वव्यापी और सनातन पराशक्ति है, यदि वह अपने इस रूप को समझ ले तो भगवान्

हो जाये पर यदि वह महत्वाकाँक्षाओं में ही भटकता है, तब तो उसे भी कीट-पतंगे की श्रेणी का ही एक जीव कहना चाहिये।

•इन सब बातों से सिद्ध होता है कि पशुओं का मानसिक और बौद्धिक विकास भले ही मनुष्य की तुलना में कम हुआ हो फिर भी उनमें प्रेम, सहानुभूति कृतज्ञता, स्वामिभक्ति आदि गुण पाये जाते हैं और कितने ही पशु समय-समय पर बुद्धिमानी का प्रमाण भी देते हैं। ये सब बातें किसी चैतन्य तत्व के अभाव में संभव भी नहीं हो सकतीं। इसलिए पशुओं को जड़ अथवा मनुष्यों का लक्ष्य समझ लेना एक बड़ी भूल है। वरन् वस्तु तथ्य तो यहाँ है कि मानसिक विकास में पिछड़ होने के कारण ये जीव-जन्तु मानव के छोटे भाई हैं, जिनके साथ उसे सहृदयता और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।



मनुष्य जीवन भी एक प्रयास

सृष्टि में विद्यमान जीवन-व्यवस्था को जन्म-मरण के चक्र को शास्त्रीय भाषा में आवागमन का चक्र कहा जाता है। आवागमन अर्थात् आना और जाना, अर्थात् किसी स्थान पर पहुँचना और कुछ समय रहकर, अभीष्ट कार्य पूरे करने के बाद वापस लौट जाना। भारतीय मनीषियों की मान्यता है कि परमात्मा प्रत्येक जीव को किसी प्रयोजन की पूर्त्ति के लिए निश्चित अवधि का समय देकर इस संसार में भेजता है और फिर वापस बुला लेता है।

मनुष्येतर जीव-जन्तुओं को तो भोग योनि कहा गया है और मनुष्य को कर्म-योनि का प्राणी माना गया है। भोग योनि के सम्बन्ध में बताया गया है कि जीव इस प्रकार अपने पूर्वकृत कर्मों का ही परिणाम या दण्ड भोगता है लेकिन मनुष्य को अपने जीवन में कर्मों की स्वतंत्रता भी प्रदान की है और उस स्वतंत्रता के साथ अन्य कई विशेषतायें देकर मनुष्य को इस लोक में भेजा गया है। इस स्वतंत्रता और

सँम्बीत्रयी विशिष्टताओं के साथ उसे कुछ विशिष्ट दायित्व भी सौंपे गये हैं और उन दायित्वों को पूरा करने के लिए संसार में भेजा जाता है। अफसर जिस प्रकार किसी दौरे पर जाते हैं और अपने अधिकारों का उपयोग कर सुपुर्द कामों को निवटा कर आते हैं, व्यापारी जिस प्रकार अपने व्यापार व्यवसाय के उद्देश्य से कहीं जाते हैं और उन कामों को पूरा करने के वाद लौट आते हैं, मनुष्य को भी उसी प्रकार कुछ विशिष्ट दायित्वों को पूरा करने के लिए जीवन-यात्रा पर भेजा जाता है। भारतीय दर्शन की यह मान्यता स्पष्ट है और इसी कारण जीवन को आवागमन के चक्र के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

यात्राएँ मानव स्वभाव का अंग

सामान्य जीवन-चक्र में भी यात्राएँ मानव स्वभाव का एक अंग ही वनी हुई हैं। जीवन में यात्राओं का यह स्थान उस समय भी था जब पृथ्वी पर यातायात के साधनों का उतना विकास नहीं हुआ था। तब न केवल आजीविका, रोजगार, अध्ययन के लिए अपितु प्राकृतिक सुषमा के दर्शन, जीवन-चक्र में आयी एकरसता को तोड़ने के लिए देशाटन से लेकर योग्यता बढ़ाने, सत्संग करने और ज्ञानप्राप्ति के लिए भी एकाकी तथा सामूहिक यात्राएँ आयोजित हुआ करती थीं। संसाधनों के विकास के साथ-साथ इस प्रवृत्ति का भी विकास हुआ है। यात्राओं की सफलता के लिए प्रचुर भौगोलिक ज्ञान, स्थान विशेष के रीत-रिवाज, रहन-सहन, योग्य विश्राम स्थलों की जानकारियाँ पूर्व में ही उपलब्ध हो जाने के कारण यह यात्राएँ अब सब तरह से आराम देह हो गई हैं।

दूसरी ओर पशु-पक्षी हैं उनमें भी प्रवास का नैसर्गिक गुण आदिकाल से चला आया है। उनकी यात्राएँ पहले की अपेक्षा अब अधिक सङ्कटपूर्ण हो गई हैं। उन्हें कोई भौगोलिक ज्ञान भी नहीं मिला होता है, किन्तु यह प्रकृति का एक चमत्कार ही है कि प्रतिवर्ष हजारों पक्षी -- जंगली जीव न केवल पड़ौसी राज्यों की अपितु सुदूर देशों की भी यात्राएँ करते हैं। मनुष्यों में भाषावाद, जातिवाद, रहन-सहन की

भिन्नता के कारण उनके हृदय परस्पर मिल नहीं पाते, पर इन जीवों में ऐसा कोई अन्तर्द्वन्द नहीं। विशेष स्थानों में अनेक देशों से आये भिन्न जाति के पक्षी और जीव-जन्तु परस्पर सहिष्णुता, आदर भावना और भाईचारे की स्वस्थ परम्परा से जीवन निर्वाह कर नियत समय पर अपनी मातृभूमि को लौट जाते हैं। मनुष्य जीवन भी एक सुनिश्चित और विराट प्रवास का लघुसंस्करण है। जीव-जन्तुओं के माध्यम से हम पता लगा सकें कि इस नैसर्गिक क्षमता का कारण क्या है तो एक अनौखी जीवन दृष्टि का विकास नितान्त सम्भव है।

प्रवासी पक्षियों में व्हाइट स्टार्क, गोल्डन प्लावर, आर्कटिक टर्न, सेन्ड पाइपर, सारस और बोवालिक मुख्य हैं। यह अधिकांश समुद्र के ऊपर उड़ान भरते हैं। इस कारण इन्हें उवाऊ दूरी लगातार उड़कर पार करनी पड़ती है। गोल्डन प्लावर टुन्ड्रा से पम्पास तक की १२००० किलोमीटर, श्वेत स्टार्क को समूचा स्टार्क जिब्राल्टर जल उमरुमध्य आर्कटिकटर्न को तो समूची धरती की परिक्रमा करनी पड़ जाती है जव ये उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव की लगभग २५ हजार किलोमीटर दूरी तय कर एक स्थान से दूसरे स्थान जाते हैं, जहाजों की तरह यह भी नियमित रूप से समुद्रों में पाये जाने वाले टापुओं में कुछ समय विश्राम कर अपनी आगे की यात्रा की तैयारी करते हैं।

योरोपीय देशों के सारस शरदऋतु में अफ्रीका आ जाते हैं और वसन्त ऋतु में पुनः लौट जाते हैं। एक बार पूर्व प्रशा (जर्मनी) से अनिभिज्ञ सारसों के कुछ वच्चे ऐसेन नामक स्थान पर ले जाकर छोड़ दिये गये। उस समय तक वहाँ के अन्य प्रवासी सारस जा चुके थे अत्यधिक चक्करदार रास्ता होने पर भी वे किसी अन्तःप्रेरणा से एक निश्चित दिशा से प्रशा जा पहुँचे। इसी तरह कुछ कौवों को उत्तरी जर्मनी और वाल्टिक के पार उत्तर-पूर्व की दिशा से ले जाकर छोड़ा गया, पर वे ५०० मील की वापसी यात्रा समानान्तर मार्ग से सम्पन्न कर यथा पूर्व स्थान पर लौट आये। आश्चर्य तो तव होता है, जब इनके अण्डे

भी यदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा दिये जायें तो उनसे निकलने वाले बच्चे भी अपने जन्म स्थान लौट आये। ऐसा पैत्रिक गुण-सूत्रों की प्रेरणा से होता है इससे संस्कारों की महत्ता प्रतिपादित होती है।

इंगलैण्ड से अफ्रीका की दूरी ६००० मील है पर वहाँ की अबाबीलें कष्ट उठाकर भी यह देशान्तर करती हैं। अमेरिका से दक्षिणी अमेरिका जाने वाली स्वर्ण टिटहरी को २००० मील यात्रा करनी पड़ती है। पेनगुट्यन उड़ नहीं सकते पर वे समुद्र में तैरकर ही आटार्कटिक से दक्षिणी अमेरिका की यात्रा करती हैं। वे जिस रास्ते जाती हैं उसी से लौट आती हैं। विशेष ध्वनि से गाते हुए चलने वाली इनकी टोलियाँ दर्शकों का मन उसी तरह मोहती हैं, जैसे मेले-ठेले जाने वाली स्त्रियों की गीत गाती टोलियाँ।

अपने जन्म स्थान की कुत्तों को भी विलक्षण पहचान होती है। वे गन्ध के सहारे सैकड़ों मील दूर से अपने घर लौट आते हैं। न्यूयार्क (अमेरिका) का कुत्ता एल्वनी विश्व भ्रमण की ख्याति प्राप्त कर चुका है इसने अकेले रेल और समुद्री जहाजों से जापान, चीन, योरोप देशों की यात्रा की और अन्ततः सकुशल न्यूयार्क वापस लौट आया।

मनुष्य कहाँ से आया, उसका यथार्थ क्या है, यह न तो समझने का प्रयास करता है न लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्न, पर यह पक्षी हैं जो दूर-दूर तक जाकर भी समय पर प्रयत्न पूर्वक खुशी-खुशी लौट आते हैं। शरद ऋतु में उत्तरी-पश्चिमी ध्रुव प्रदेशों के पक्षी भारत, दक्षिणी अफ्रीका, श्री लङ्का तक फैल जाते हैं, पर ग्रीष्म ऋतु आते ही अपनी जन्म-भूमि लौट जाते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जीव वैज्ञानिकों ने जर्मनी के ब्रिमेन नगर में एक प्रयोग किया उन्होंने सात अबाबीलें पकड़ीं और उन्हें लाल रङ्ग से रङ्ग दिया। फिर उन्हें विमान में बैठाकर लन्दन लाकर हवाई अड्डे के पास छोड़ दिया गया। पीछे पाया गया कि उनमें से पाँच अबाबीलें सुरक्षित अपने पूर्ववर्ती घोंसलों में पहुँच गईं।

हममें से अनेकों मनुष्यों को परमात्मा कुछ विशेष बौद्धिक और

आत्मिक गुणों से सम्पन्न कर पृथ्वी पर भेजता है और यह आशा करता है कि वे सृष्टि को सुन्दर बनाने की उसकी कल्पना को साकार बनायेंगे, पर वह ऐसा करना तो दूर अपने बुद्धि कौशल को अपने ही स्वार्थ साधनों में उलझाकर यह कामना करता रहता है कि उसे संसार से जाना नहीं पड़ेगा। अपनी हठ बुद्धि के कारण वह न केवल संसार को कुरूप बनाता है अपितु पश्चात्ताप भरी जिन्दगी लेकर लौटने को विवश होता है।

नवीनता के प्रति आकर्षण जीवन का नैसर्गिक गुण है। यह गुण भी जीवन की पृथक्-पृथक् इकाइयों में सामंजस्य प्रस्तुत करता है और मनुष्य को उसके चिन्तन के लिए भावभरी विराट् सामग्री प्रदान करता है। जीवों की भाँति मनुष्यों में भी यह गुण पाया जाता है। किन्तु सांसारिकता के भार इस तरह के आह्लाद प्रदान करने वाले गुणों को भी नष्ट कर देते हैं। तब उनकी पाशविकता उभरकर सामने आ जाती है। अच्छे और नये के स्वागत की दृष्टि ने ही भारतीय मनीषा को अचानक कर्मयोग का दर्शन दिया है। इस परम्परा को बनाये रखने में न केवल प्रसन्नता अपितु पवित्रता भी निहित है। अमेरिका के आरेगन राज्य में सिलवर्टन नाम के एक कस्बे के निवासी फ्रेंक ब्रेजियर ने कोली जाती का एक कुत्ता पाला नाम रखा गया "वाबी"। वाबी बड़ा ही स्वामिभक्त कुत्ता था वह न केवल तरह-तरह के करतबों से घर वालों का मनोरंजन करता अपितु वह एक स्वामिभक्त सेवक के सभी कर्त्तव्य निबाहता, घर की रखवाली के अतिरिक्त बच्चों को स्कूल पहुँचाना, जंगली जानवरों से खेतों की रक्षा करना उसकी दिनचर्या में सम्मिलित कार्य थे। एक बार ब्रेजियर को इडियाना जाना पड़ा साथ में वाबी भी था। दुर्भाग्य से कुत्ता वहाँ खो गया बहुत खोजने पर भी वाबी न मिला तो निराश ब्रेजियर वापस सिलवर्टन लौट आये। किन्तु वाबी निराश नहीं हुआ। नितान्त अपरिचित ३००० मील का कष्ट भरा मार्ग उसने अगणित बाधाओं के बावजूद पार कर ही लिया और अन्ततः

एक दिन अपने मालिक तक पहुँचने में सफलता प्राप्त करली। इसे कुत्तों की यात्रा का सबसे बड़ा रिकार्ड माना गया है। साथ ही उसकी स्वामिभक्ति का अद्भुत उदाहरण भी।

इसी तरह भावनाओं के अलौकिक जगत के सत्य से हमें भी इन्कार नहीं करना चाहिए। यह सत्य दृष्टि में निरन्तर बना रहे तो अनायास ही दुष्कर्मों और खोटे कृत्यों से छुटकारा मिल जाता है, पर उसी के साथ ही व्यावहारिकता का आधार भी नष्ट न हो तो ही संतुलन बना रह सकता है। नवीन के प्रति अनन्य जिज्ञासा का अर्थ पलायनवाद नहीं होना चाहिए। अपनी इसी त्रुटि के कारण भारतीय जीवन ने धक्का खाया और शिरोमणि तत्त्वदर्शन को धरती की धूल चाटनी पड़ी। आकाश की कल्पना करते समय धरती के यथार्थ से मुँह न मोड़ें, जन्म स्थान बार-बार लौटने में जीवों को प्रकृति का यही संदेश संकेत हो सकता है।

प्रकाश की खोज —

प्रकाश चिरकाल से ही मानवीय प्रेरणा का स्रोत रहा है। प्रकाश जितना दिव्य और स्निग्ध होता है उतना ही मोहक लगता है। चैत्र की नवरात्रियों के समय आकाश से आने वाले प्रकाश में कुछ ऐसी दिव्यता होती है, कि उसका अनुभव कर आँखें चमकने लगती हैं। ब्याह-शादियों के समय छूटने वाली फुलझड़ियाँ देखकर न केवल बच्चे अपितु बड़े भी प्रसन्न होते हैं। प्रकाश का मानवीय चेतना से कोई सीधा सम्बन्ध है, तभी हम अन्धकार बर्दाश्त नहीं कर पाते। परमात्मा से "अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलने" की प्रार्थना करते हैं। प्रकाश ही जीवन और अन्धकार अविद्या है। यह बात प्राण चेतना पर समान रूप से लागू होती है चाहे वह मनुष्य हो या मनुष्येतर जीव।

पक्षियों के प्रवास सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पक्षियों का प्रवास जिन कारणों से प्रेरित होता है उनमें ऋतु परिवर्तन को अनुकूल बनाये रखना, भोजन प्राप्त करना गौण है।

अधिक समय तक प्रकाश की उपलब्धि ही प्रमुख है। जिन प्रदेशों में चौवीसों घण्टे या अधिक से अधिक समय सूर्य का प्रकाश रहता है, वहाँ पक्षी अधिक रहना पसन्द करते हैं। ध्रुवों के समीपवर्ती प्रदेश इसी कोटि के हैं। आर्कटिक टर्न तथा गोल्डेन प्लोवर ऐसे ही पक्षी हैं जो ध्रुवों की यात्रा गर्मियों में ही करते हैं। क्योंकि उन दिनों वहाँ से सूर्य चौवीसों घण्टे दिखाई देता है। केवल मौसम की ही बात होती तो उसमे आये दिन उतार-चढ़ाव आते रहते हैं किन्तु वे ऐसा नहीं करते। अमेरिका के एक सर्वेक्षण में यह पाया गया है कि वहाँ सैन जुआन कैंपिस्ट्रान स्थान में आने वाले स्वालो पक्षी प्रतिवर्ष एक ही निर्धारित तिथि को पहुँचते हैं।

न्यूयार्क में एक पक्षी पाया जाता है ब्राँज कक्कू—इनके वच्चे पैदा होते ही आत्मनिर्भर जीवन विताते हैं। माता-पिता इन्हें अपने साथ यात्राओं में भी नहीं ले जाते जव कि वे प्रतिवर्ष सोलोनद्वीप समूह की यात्राएँ करते हैं। न जाने कौन-सी सूक्ष्म अन्तःप्रेरणा है कि वच्चे अपने आप ही अपने पूर्वजों की तरह यात्राएँ करने और उन स्थानों में स्वतः पहुँच जाते हैं, जहाँ उनके पितामह आते जाते रहते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्रकाश किरणों की दिशा, विद्युत चुम्वकीय क्षेत्र तथा पृथ्वी के घूमने की स्थिति को पक्षी भली प्रकार अनुभव करते हैं इसी कारण वे इतनी लम्वी यात्राएँ विना किसी जान-पहचान और यन्त्र के सम्पन्न करते हैं, नक्षत्रों की स्थिति सूर्य के परिभ्रमण के आधार पर भी वे अपनी यात्राएँ सम्पन्न करते हैं किन्तु जितना ही उनका यह सूक्ष्म वोध आश्चर्यजनक है उसी तरह यह तथ्य भी है कि वे रात में विना पूर्वज्ञान और मार्गदर्शन से उन्हें इन सभी परिस्थितियों की जानकारी किस स्रोत से उपलब्ध होती है।

जीव-जन्तुओं की संस्कृति—

मैरीटेरियन सागर में गर्मी के प्रारम्भिक दिनों में मछलियों की वहुतायत देखने को मिलती है। मैकरल, पिलचर्ड और हैरिंग नाम की

रङ्ग-विरङ्गी मछलियाँ इधर-से-उधर खेलती, कूदती, उछलती,फुदकती हुई वहुत अच्छी लगती हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है क्रीड़ा और मनोरञ्जनपूर्ण जीवन ही यथार्थ है। पैसा और प्रजनन की चिन्ता में पड़े घिसी-पिटी जिन्दगी जीना कोई बुद्धिमत्ता नहीं।

कुछ ही सप्ताह वाद वहाँ जायें तो फिर एक भी मछली दिखाई न देगी। चहल-पहल वाला वह क्षेत्र विलकुल सूना-वीराना दिखाई देने लगता है। प्रलय के वाद पृथ्वी की-सी नीरवता और निर्जनता का साम्राज्य देखकर लगता है—जीवन पृथ्वी से बँधा हुआ नहीं, वह परमात्मा की एक कलात्मक सत्ता है, जो इन मछलियों की तरह आनन्द के लिए कभी पृथ्वी में आ जाता है तो कभी अन्य लोकों में। उसे सांसारिक बन्धनों से बाँधना वेवकूफी है। मुक्ति के इच्छुक जीवन को तो प्रवासी होना चाहिए। आज यहाँ, कल वहाँ—उसके लिए तो सारा संसार ही अपना घर है।

स्काम्वर नाम की मछलियों का जीवन वनजारे की तरह होता है। शीत ऋतु में स्काम्वर उत्तरी समुद्र में वड़ी संख्या में देखने को मिलती हैं। ग्रीष्म ऋतु आई और जैसे ही किनारों का पानी गर्म होना प्रारम्भ हुआ वे वड़े-वड़े समुदाय वनाकर उत्तरी अटलाण्टिक महासागर के दोनों तटों पर पहुँच जाती हैं। जीव-शास्त्रियों का मत है कि मछलियाँ खाने और प्रजनन के लिए प्रवास (माइग्रेशन) करती हैं, पर स्काम्वर उन भारतीयों की तरह हैं जो आत्म-कल्याण के लिए ही अन्तेवास करते हैं। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दो आश्रम सामुदायिक सङ्गठन में एक स्थान पर रहकर वित्ताने के वाद वे सांसारिक प्रलोभनों को ठुकरा कर विराट् सीमा के सौन्दर्य का रसपान करने निकल पड़ते हैं और वानप्रस्थ व संन्यासी जीवन जंगलों, पहाड़ों, घाटियों और सुदूर देशों में भ्रमण करते हुए व्यतीत करते हैं। एक स्थान पर रहकर सांसारिक गन्दगी बढ़ाने का पाप हम भारतीयों ने स्काम्वर के समान ही कभी नहीं वढ़ने दिया। इस तरह हम एक स्थान पर रहते हुए भी सारे

संसार के वने रहें।

स्काम्बर भी ऐसा ही करती हैं। तरीके में थोड़ी-ही भिन्नता है। मई–जून में वे उत्तरी समुद्र में ही अण्डे-वच्चे देती हैं और फिर वहाँ से अकेले नहीं, अपने सम्पूर्ण समुदाय को लेकर वहाँ से निकल पड़ती हैं। "अकेले नहीं, हम सव" का सिद्धान्त रखकर लगता है ये मछलियाँ श्रेष्ठता में मनुष्य से आगे निकल गईं।

एक वार गुरु नानकदेव एक ऐसे गाँव में पहुँचे, जहाँ के लोग वड़े उद्दण्ड और गँवार थे। उन्होंने नानक की आवभगत भी अच्छी तरह नहीं की, फिर भी जव वे चलने लगे तो ग्रामवासियों को आशीर्वाद दिया –'तुम लोग इसी तरह आवाद रहो।' नानक अगले दिन अगले गाँव में रुके। वहाँ के लोग वड़े नेक, शान्तिप्रिय, अहिंसावादी और मिलनसार थे। उन्होंने नानक का यथेष्ट आदर-सत्कार किया। नानक विदा होने लगे तो वे लोग उन्हें कुछ दूर पहुँचाने भी गये। प्रणाम कर जव ग्रामवासी लौटने लगे तो नानक ने आशीर्वाद दिया— 'तुम लोग उजड़ जाओ, तुम लोग उजड़ जाओ।'

नानक के एक शिष्य को यह वात नहीं भायी, उसने कहा — महात्मन् ! बुरे लोगों को अच्छा आशीर्वाद और अच्छे लोगों को बुरा— वात कुछ समझ में नहीं आई। नानक हँसे और बोले – वात यह है कि बुरे लोग संसार में फैलें तो उससे बुराई उसी तरह फैलती है जैसे अँग्रेजों की अँग्रेजियत सारी दुनियाँ में फैल गई पर यदि अच्छे लोग एक ही स्थान पर जमे बैठे रहें - लोक-सेवा के उद्देश्य से वे घर न छोड़ें तो संसार में भलाई के विस्तार का अवसर ही कहाँ आयेगा ?

शिष्य की समझ में सारी वात स्पष्ट हो गई पर हम अभी तक यह वात नहीं समझ पाये। आजीविका और अपने वच्चों के विकास की दृष्टि से भी हमें संसार में फैलना पड़े तो एन्ग्रालिश मछली की तरह फैलना ही चाहिए। विश्व की विशदता का और अपने आप को अच्छी तरह अध्ययन करने का अवसर तो तभी मिलता है, जव हम औरों के

पास जाकर अपनी तुलना करें। हिन्दू, मुसलमान आदि जातियाँ कोई ईश्वरीय विधान नहीं। जाति एक सापेक्ष वस्तु है, उसकी अच्छाई-बुराई का आधार गुणों की श्रेष्ठता ही हो सकती है, वंश नहीं। यह पता हमें और सारे संसार को तभी चल सकता है, जब हमारे सम्पर्क का दायरा विस्तीर्ण हो।

एन्ग्रालिश मछली वसन्त ऋतु में अपनी चैनेल में पाई जाती हैं, किन्तु अण्डे देने के लिए वह 'ज्वाइडर जा' के बाहरी हिस्से में पहुँच जाती हैं। सारडिना मछली जुलाई से दिसम्बर तक कार्नवेल में रहती हैं पर जाड़ा प्रारम्भ होते ही वह गरम स्थानों की ओर चल देती हैं। सामों मछली समुद्र में पाई जाती है, पर उसे गङ्गा और यमुना नदी के जल से अपार प्रेम है। अपने इस अपार प्रेम को प्रदर्शित करने और अच्छे वातावरण में अपने बच्चों के पालन पोषण के लिए वह हजारों मील की यात्रा करके गङ्गा, यमुना पहुँचती है। अण्डे-बच्चे सेने के बाद भोजन के लिए वह फिर अपने मूल निवास को लौट आती है। इस स्वभाव के कारण ही सामों दीर्घजीवी और बड़ी चतुर मछली होती है। हमारी तरह उनके बच्चे भी सामाजिक संकीर्णता में पले होते तो इस अतिरिक्त विकास का अवसर उसे कहाँ मिल पाता।

हमारी कमजोरी यह है कि विपरीत परिस्थितियों और संघर्षों से टकराना हमें अच्छा नहीं लगता। शांतिपूर्ण दिखाई देने वाली यह स्थिति वस्तुतः एक भ्रम है और हमारे विकास का मुख्य अवरोध भी। यों तो संसार की अधिकांश सभी जातियों की मछलियाँ उल्टी दिशा में चलती हैं, पर योरोप में पाई जाने वाली एन्ग्युला बहाव की उल्टी दिशा में चलकर लम्बी यात्रा करने वाली उल्लेखनीय मछली है। ज्ञान और सत्य की शोध में हिमालय की चोटियों तक पहुँचने वाले भारतीय योगियों के समान यह एन्ग्युला मछली अटलाण्टिक महासागर पार करके गहरे पानी की खोज में वरमुदा के दक्षिण में जा पहुँचती है। वरमुदा अमेरिका के उत्तरी कैरोलाइना राज्य से ६०० मील पूर्व में स्थित ३५०

छोटे-छोटे द्वीपों का एक समूह है।

वहाँ अण्डे-बच्चे देकर यह अपने घर लौट आती है। उसके प्रवासी बच्चों में अपने माता, पिता, पूर्वजों और संस्कृति के प्रति इतनी प्रगाढ़ निष्ठा होती है कि ढाई-तीन साल के होते ही वे वहाँ से चल पड़ते हैं और ५-६ महीने की यात्रा करते हुए अपने जाति भाइयों से जा मिलते हैं और इस तरह बहुत दूर-दूर होकर भी उनका अपनी जाति से सांस्कृतिक सम्बन्ध उसी प्रकार बना रहता है, जिस तरह सैकड़ों मोरिशस, ट्रिनिडाड, केन्या, यूगाण्डा, मलेशिया थाई, इण्डोनेशिया, नैटाल, डर्बन, सुवाफीजी, लङ्का, बर्मा, इङ्गलैंड और अमेरिका में रहने वाले भारतीय आज भी अपने धर्म और अपनी संस्कृति की आदि भूमि भारतवर्ष से सम्बन्ध बनाये हुए हैं।

प्रवासी पक्षियों का सांस्कृतिक प्रेम —

कार्तिक लगा और भरतपुर की झीलें तरह-तरह के रंगीन चहल-पहल करने वाले प्रवासी पक्षियों से भरनी प्रारम्भ हुईं। कहते हैं भरतपुर आने वाले अधिकांश पक्षी रूस के साइवेरिया प्रान्त से आये हुए होते हैं। पक्षियों का यों विश्व के भिन्न-भिन्न स्थानों से यह प्रेम विलक्षण है, और कौतूहल वर्द्धक भी। उससे जीव मात्र की एकता और सम्पूर्ण पृथ्वी के एक परिवार, एक इकाई होने का जो प्रमाण मिलता है, वह भी कम कौतूहल वर्द्धक नहीं।

बड़ौदा के आस-पास तथा कच्छ के नल सरोवर में भी शेष भारत और विश्व के अनेक भागों से आये हुए पक्षी जाड़े के दिन किस हँसी-खुशी से काटते हैं, उसे देखकर लगता है कि संसार के लोग भी ऐसे ही परस्पर मिल-जुलकर रहने का अभ्यास कर सके होते, तो विश्व कितना खुशहाल दिखाई देता।

पक्षियों के प्रवासी जीवन (माइग्रेशन) का अपना एक विचित्र ही इतिहास है। जहाँ मनुष्यों में थोड़ी-थोड़ी जमीन, भाषावार प्रांत, देश-देशान्तरों के मध्य सीमा-विवाद उग्र रूप धारण करते और रक्तपात

की परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं, वहाँ पक्षी हैं मनुष्य से बहुत नेक, जिन्हें न तो भाषा का भेदभाव करना आता है, न प्रान्त और देश का। थोड़े दिन का आयुष्य, बड़ी हँसी-खुशी के साथ बिता लेते हैं।

पक्षी-विशेषज्ञों का मत है कि वे यह सब अन्तःप्रेरणा से करते हैं। इस प्रेरणा का उद्देश्य मौसम की अनुकूलता प्राप्त करना, भोजन और आजीविका की खोज, बच्चे पैदा करने के लिए उपयुक्त वातावरण प्राप्त करना होता है। कई पक्षी प्रकाश की कमी अनुभव करने पर उसी प्रकार एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थानों में चले जाते हैं जिस प्रकार कुछ देशों में राजनैतिक या शासन-तन्त्र की भयङ्करता के कारण बहुत से लोगों को निर्वासित होना पड़ता है।

किन्तु चिड़ियों के प्रवास की दिशा का अध्ययन यह बताता है कि ऐसा करते समय पक्षी अपना सूक्ष्म बुद्धि, विवेक एवं सूझ-बूझ का भी प्रयोग करते हैं। वे जब अक्षांशीय (लॉंगीच्यूडनल) पथ पर एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव की ओर यात्रा करते हैं, तब ऐसे स्थानों से होकर चलते हैं, जहाँ उन्हें भोजन, घोंसले आदि की सुविधा रहे। लौटते समय भी वे उसका ध्यान रखते हैं। यह केवल अन्तःप्रेरणा से ही नहीं हो सकता, इसमें उनकी समझ ही प्रधान होती है। मनुष्य भी इसी प्रकार प्रवास से पूर्व समझ से काम लें यह आवश्यक है।

पक्षी जब उत्तरी गोलार्द्ध से दक्षिणी गोलार्द्ध को चलते हैं, तो यह सीधा (देशान्तरीय) प्रवास (वर्टीकल माइग्रेशन) कहलाता है। इसमें भी वही सूझ-बूझ रहती है। कुछ पक्षी जो स्थायी रूप से रहते हैं, पर कुछ ही समय के लिए बाहर जाते हैं, उदाहरण के लिए कौवे, खञ्जन, पिप्पलीज, मछली राजा (किंग फिशर) आदि को खाना नहीं मिलता, बर्फ जम जाती है तब कुछ ही दिन बाहर रहना पड़ता है, फिर वे वापिस आ जाते हैं। कुछ चिड़ियायें होती ही खानाबदोश (बर्ड आफ पैसेज) हैं। वें घूमते-फिरते हुए सृष्टि के विभिन्न दृश्यों का आनन्द लेती हुई जीवन यापन करती हैं। इसकी मनुष्य से तुलना करने पर लगता

है एक ही गाँव, प्रांत और देश को घर बना लेना मनुष्य जाति की कितनी सङ्कीर्णता है, यदि हम सारे संसार को ही एक परिवार, एक देश मान सके होते तो धरती स्वर्ग बन गई होती ।

डा० एलचिन ने बहुत दिन तक चिड़ियों के प्रवासी जीवन का अध्ययन करके लिखा है एक पक्षी समय के अनुसार अधिक-से-अधिक अपने रहन-सहन, वेष-भूषा में परिवर्तन भी कर लेते हैं । पर अपनी सभ्यता, संस्कृति और आदर्शों को वे उन स्थानों में भी नहीं भूलते जहाँ उन्हें प्रवासी जीवन बिताना पड़ता है । हम भारतीय हैं जिन्होंने कभी 'कृण्वन्तोऽिवमार्यम्', 'हम सारे विश्व को आर्य (सुसंस्कृत) बनायेंगे' का नारा दिया था, संसार भर में फैल गये थे, लोगों को धार्मिक, सांस्कृतिक उपदेश व शिक्षण देकर उन्हें सभ्य व सुसंस्कृत बनाया था · उनकी सांस्कृतिक निष्ठा रत्ती भर भी न डिगी थी, तभी सारे विश्व को प्रभावित करना सम्भव हुआ था । आज तो स्थिति बिलकुल ही उलट गई । लाखों-करोड़ों भारतीय जावा, सुमात्रा, मौरिशस, केन्या यूगांडा, ट्रिनीडाड, फिलीपाइन्स, नैटाल, डर्बन, मलाया, सिंगापुर आदि में बसे हैं, पर उनकी अपनी न शिक्षा रही न संस्कृति । वेष-भूषा, रहन-सहन, आहार-विहार तक बदल गये । नाम अभी भी भारतीय हैं, पर काम और आचार-विचार तो पाश्चात्यों से भी गये गुजर हो गये । अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा न होना सत्य सनातन धर्म के लिए भारी आघात हुआ । हम अपनी ही निष्ठा से टूट गये तो ससार पथभ्रष्ट क्यों न होता ?

चिड़ियाँ चलने के लिए तैयारी करती हैं तब अपने पुराने पङ्ख गिराकर नये पङ्ख धारण कर यात्रा का स्वागत करती हैं । पहले वे एक बार परीक्षण उड़ान कर लेती हैं । अकेले नहीं, अनेक चिड़ियाँ एक दिन एक स्थान में नियत समय पर एकत्रित होकर उड़तीं और सङ्गठन व एकता की महत्ता प्रतिपादित करती हैं । वे दिन में भी चलती हैं और सुरक्षा की दृष्टि से रात में भी । पर यात्रा के दिनों में उनकी सभ्यता और शिष्टाचार देखते ही बनता है ।

सबसे आगे कबीले की झुण्ड की वृद्ध चिड़ियायें चलतीं और मनुष्य जाति को संकेत से समझाती हैं कि वृद्ध शरीर से कितने ही अशक्त क्यों न हो जायें वे कभी अनुपयोगी नहीं होते। उनके पास जीवन भर का ज्ञान और अनुभव संग्रहीत रहता है। चिड़ियाँ उनसे महत्त्वपूर्ण लाभ ले सकती हैं, तो मनुष्य जैसा समझदार प्राणी वैसा क्यों नहीं कर सकता ? भारतीय संस्कृति में वृद्धों को, माता-पिता को इतना सम्मान दिया गया है, तभी हम संसार में अपना गौरव स्थापित कर सके हैं और आज जबकि पाश्चात्यों के अन्धानुकरण व अपनी ही दुर्बलताओं के शिकार हमने उन्हें आदर देने में कमी कर दी तब हम दिग्भ्रान्त पथिक के समान इधर-उधर भटकते भी दिखाई दे रहे हैं।

चिड़ियों की समझ इस दृष्टि से मनुष्य की समझ से श्रेष्ठ है। वे जब अपने देश से जाती हैं, तब वृद्धों को आगे रखती हैं। उनके पीछे अर्थात् मध्य में छोटे बच्चे होते हैं सुरक्षा की कितनी सावधानी सबसे पीछे युवा पक्षी। पर लौटते समय यह स्थिति बिलकुल बदल जाती है। वृद्धों के आदेश पर प्रौढ़ पक्षी सबसे आगे चलते हैं, ताकि वे अगली यात्राओं के लिए अनुभव प्राप्त करें, दक्ष हो जायें बीच में वही छोटे बच्चे और सबसे पीछे मार्ग-दर्शन करती हुई वृद्ध चिड़ियायें। वे रहती भर हैं पीछे, पर रास्ता चलने में थोड़ी-सी भी भूल हो तो वे सुधार देती हैं। घनी अँधेरी रातों में भी वृद्ध पक्षी तारागणों की मदद से उन्हें चलना सिखाते हैं। पक्षी अपने बुजुर्गों के सम्मान का पूरा लाभ लेते हैं जबकि हम मनुष्यों ने बुजुर्गों का सत्कार न कर अपना भारी अहित किया।

हजारों मील की दूरी तक चले जाते हैं यह पक्षी, पर जब वापिस लौटते हैं तो अपनी संस्कृति, बोली, भाषा में किञ्चित मात्र परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। आर्कटिक टर्न ११००० मील की यात्रा करती है तो गोल्डेन पावर ७००० मील का प्रवास। वुडकाक, सारस, और राबिन पक्षी क्रमशः २५००, २०००, १००० मील तक चले जाते हैं। छोटी-छोटी गौरैया और चहचहाने वाली चिड़ियाँ भी ५०० व

३०० मील तक चली जाती हैं और विश्व भ्रमण का आनन्द व ज्ञान-लाभ प्राप्त करती हैं

समुद्र के तट, पर्वत, वादी, घाटियों और नदियों का भ्रमण करते पक्षी होते हैं छोटे, पर अपना दृष्टिकोण विशाल बना लेते हैं। पक्षी-विशेषज्ञों का विश्वास है कि इन्हें पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र, उसके घूमने से उत्पन्न मैकेनिकल फोर्स आदि का भी पता होता है। मनुष्य ही है, जो कि अपने सीमित ज्ञान पर दम्भ दिखाता है। यह पक्षी जो ज्योतिर्विज्ञान तक से परिचित होते हैं, अंधेरी रातों में तारों की मदद से आगे बढ़ते चले जाते हैं, पर उन्हें अपनी श्रेष्ठता का कुछ भी अभिमान नहीं होता। एक छोटे से प्राणी की चहकती-फुदकती जिन्दगी जी लेते हैं और साथ ही तरह-तरह के ज्ञान और अनुभव भी अर्जित करते रहते हैं लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ कि उन्होंने अपनी नैसर्गिक प्रकृति, संस्कृति और विशेषताओं का परित्याग किया हो।

यह तो मनुष्य ही है जो महत्त्वहीन और निर्मूल्य सुख-साधनों के प्राप्त होते ही अपने आपको भूल बैठता है और अपनी विशेषताओं, क्षमताओं तथा दायित्वों की स्मृति खो देता है। उचित यही है कि जीवन को एक प्रवास एक यात्रा मानते हुए उसे सफलतापूर्वक संपन्न करने की बात सोची जाय तथा मनुष्य जीवन को सफल व सार्थक बनाया जाय।



भाव संवेदनाएँ आत्म चेतना की प्रतीक



न्यूजीलैंड द्वीप के पास कुक जल डमरू मध्य में कोई ५ मील' ऐसा समुद्र है, जिसमें बड़ी-बड़ी मूँगो और पत्थरों वाली टेढ़ी-मेढ़ी चट्टानें हैं। यहीं डालफिन जाति की एक दस फुट लम्बी और तीन फुट चौड़ी मछली रहती थी। वह मछली इस खतरनाक स्थान में नाविकों को सही रास्ता बताती थी, जिससे वे दुर्घटनाओं से बच जाते थे। जहाजी इसी कारण प्यार से उसे पेलोरस जैक' कहा करते थे।"

"जब तक खतरा रहता मछली आगे-आगे चलती और जहाज पीछे-पीछे। जैसे ही साफ समुद्र आ जाता वह एक बार ऊपर उछलती और गोता लगाकर भाग जाती। नाविक समझ जाते थे, अब कोई खतरा नहीं है। एक बार एक जहाज के किसी अजनबी व्यक्ति ने उस विलक्षण मछली पर गोली दाग दी। गोली लगते ही मछली डुबकी लगाकर भाग गई और कई वर्ष तक नहीं दिखाई दी। इस बीच कई जहाज वहाँ दुर्घटना ग्रस्त हो गये।"

"कुछ दिन तक विश्राम करने के पश्चात् मछली का घाव ठीक हो गया। इसी बीच न्यूजीलैंड सरकार ने निषेधाज्ञा प्रसारित कर दी कि उस मछली को मारने वाला दण्ड का अधिकारी होगा। इसके कुछ दिन बाद ही वह मछली फिर दिखाई देने लगी। उसने मनुष्य की कृतघ्नता का बिल्कुल ध्यान न दिया और फिर से परोपकार के व्रत का पालन करने लगी। आश्चर्य यह है कि जैसे ही वह रोट्टरा नामक उक्त जहाज को देखती वैसे ही डुबकी लगाकर भाग जाती। जब इस मछली की मृत्यु हुई तो उसकी असाधारण सेवा के लिये न्यूजीलैंड-वासियों ने उसका एक भव्य स्मारक बनाया। उसकी एक प्रस्तरमूर्ति प्रतिष्ठित की गई जो अब भी विद्यमान् है।"

इस मछली का विचित्र वर्णन दिल्ली से प्रकाशित होने वाले—नव भारत टाइम्स के साहित्यिक संस्करण में छपा था। इसी पत्र में कैप्टन पी० जे० प्रसाद द्वारा लिखा हुआ लद्दाख सीमांत का एक और विवरण प्रकाशित हुआ था, जिसमें बताया गया है कि कुछ याकों ने बर्फीले तूफान से सीमा रक्षकों को बचाया था। जैसे ही तेज अंधड़ आता—बताते हैं याक पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो जाते और गश्तीदल उनकी ओट में छुप जाता। इस तरह भयंकर, बर्फीले तूफान से बचकर गश्तीदल अपने खेमे तक पहुँच जाता।

यह घटनायें सिद्ध करती हैं कि—चेतन स्वरूप आत्मा ही सर्वभूत प्राणियों में विद्यमान् है। अपने-अपने कर्मानुसार जीव विभिन्न शरीरों में प्रगट होता है, किन्तु जीव-मात्र की आत्मिक स्थिति एक जैसी है, इसलिये कभी किसी जीव को न मारना चाहिये, न सताना चाहिये। उनसे आत्म-विकास की शिक्षा लेनी चाहिये।

विश्व में दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं—जड़ और चेतन। वृक्ष, वनस्पति, पौधों, गुल्म-लताओं तक में चैतन्य के चिह्न प्रकट हो रहे हैं, किन्तु तमोगुण की अधिकता के कारण वे सब अविकसित प्राणी हैं, कीट-पतङ्ग, वृक्षों की अपेक्षा थोड़ा अधिक विकसित हैं, पशु-पक्षियों

का स्वाभाविक ज्ञान कीट-पतङ्गों से भी अधिक विकसित पाया जाता है। कई वार तो पशु-पक्षियों की विशेषतायें मनुष्य की बुद्धि और उसके चातुर्य को शर्मिन्दा करने लगती हैं। आहार, निद्रा, भय, मैथुन तक में ही नहीं, ज्ञान-विज्ञान, धर्म, वुद्धि-विवेक में भी वे मनुष्य से बढ़े-चढ़े पाये जाते हैं। यद्यपि उनमें आत्म-कल्याण के लिये साधनायें करने वाला नैमित्तिक ज्ञान नहीं होता। वह लाभ केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। पर यदि सामान्य जीवों की गतिविधियों को देखकर हम यह मान लें, कि आत्म-चेतनता कर्मानुसार अन्य योनियों में भी जाती है और यदि मनुष्य में धार्मिकता, सच्चाई, ईमानदारी उत्कृष्टता आदि नहीं हैं तो उसकी स्थिति पशुओं से भी निम्नतर है, तो अवश्य ही आत्मा को पहचानने और जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने का भाव जागृत हो सकता है।

साहस, दया और करुणा

आक्रमण और मृत्यु के भय से जिस तरह मनुष्य कई वार किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, वैसी ही घवराहट कई जीवों और पक्षियों को भी होती है, उससे पता चलता है कि वे भी जीवन और मृत्यु की शृङ्खला में जुड़े होते हैं और मोह आसक्ति अज्ञान के कारण उन्हें भी मृत्यु से ठीक उसी तरह डर लगता है, जिस तरह मनुष्य को।

अरव, सीरिया, मोसोपोटामिया और अफ्रीका आदि में शुतुर्मुर्ग नाम का एक सात-आठ फुट लम्बा पक्षी पाया जाता है। शुतुर्मुर्ग की मूर्खता प्रसिद्ध है। कोई खतरा दिखाई देने पर वह अपना सिर वालू में छिपा लेता है और समझ लेता है कि खतरा दूर हो गया। उसका गुस्सा भी उतना ही प्रवल होता है, गुस्से में वह भयंकर आक्रमण करता है। कहते हैं उसकी चोंच का प्रहार इतना तीक्ष्ण होता है कि लोहे की चादर में भी छेद हो सकता है।

शुतुर्मुर्ग में स्नेह सद्भाव का भी विलक्षण भाव पाया जाता है। पक्षी होने पर भी वह जेवरा और हिरणों के साथ रहता है।

कुछ समय पूर्व सारस पक्षियों के सम्बन्ध में कहा जाता कि सर्दियों में वह उड़कर देशान्तर को चला जाता है। यात्रा के समय वह कई छोटे-छोटे पक्षियों को भी अपनी पीठ पर बैठाकर उड़ जाता है। प्रवासी पक्षियों के सम्बन्ध में बड़ौदा के गायकवाड़ विश्वविद्यालय के प्राणि-शास्त्र विभाग में खोजबीन करने वाले प्राणिविद प्रो० जे० सी० जार्ज ने इस विश्वास का उल्लेख किया है। यह न भी हो तो भी सारस का दाम्पत्य प्रेम विलक्षण माना गया है। नर या मादा को मारकर कोई उसे तब तक नहीं लेजा सकता, जब तक उसी तरह साथी को भी न मार दिया जाये।

पंजाब में करनाल जिले के थानेश्वर नामक स्थान के पास कुछ तालाब हैं। वहाँ सारसों के अनेक जोड़े निवास करते हैं। एक बार एक सारसी पर एक गीदड़ ने आक्रमण कर दिया। सारसी के पैर में जख्म हो गया, जिससे वह पीछे हट गई पर अब गीदड़ ने उसके छोटे बच्चे पर हमला कर दिया। इस बार सारसी की ममता ने प्रचण्ड रूप धारण किया। घायल होते हुए भी उसने साहस और बुद्धि से काम लिया। उसने चोंच से गीदड़ की आँखों में तीखे प्रहार किये जिससे भयभीत होकर गीदड़ भाग गया। उधर मादा की आवाज सुनकर नर सारस भी आ पहुँचा उसने भी गीदड़ पर हमला कर दिया, जिससे गीदड़ को भागते ही बना।

साहसी ही नहीं मनुष्येतर जीवों में दया और करुणा भी कम नहीं होती। बुन्देलखण्ड की एक घटना है, एक गाँव का कोई ५ वर्ष का बालक खेलते-खेलते गाँव के किनारे पर पहुँच गया। वहाँ से खेल प्रारम्भ होते थे। उधर से एक विषधर सर्प दौड़ा आ रहा था, सर्प उत्तेजित था इसलिये उसने उस बच्चे को ही घेर लिया। यह दृश्य वृक्ष की शाखा पर बैठा एक बन्दर देख रहा था। उसे बच्चे पर दया हो आई, वह चटपट नीचे उतरा और पीछे से जाकर सर्प को एक तमाचा जड़ा। साँप ने बच्चे को तो छोड़ दिया और बन्दर पर झपट पड़ा।

वन्दर ने साहस और बुद्धि से काम लिया। वह वार भी करता था और प्रतिघात से भी बचता था। यह द्वन्द-युद्ध एक घण्टे चला और अन्त में विजय वन्दर की ही रही, उसने साँप को कूँच-कूँच कर जानसे मार डाला।

गाय वहुत सीधा जानवर है, गायें वहुत कम लड़ती-भिड़ती हैं पर अपने वच्चे, कुनवे और साथियों के प्रति उनमें सामूहिकता और सहकारिता का कितना अच्छा भाव होता है. उसकी एक विचित्र घटना ओरछा में घटित हुई। उसे सुनकर मनुष्य की शक्ति और ज्ञान का दंभ मिथ्या प्रतीत होने लगता है। मनुष्य जो करता है, उसमें अपना स्वार्थ प्रधान रहता है पर गायों ने सवके स्वार्थ में अपना स्वार्थ सन्निहित सिद्ध कर दिखाया।

वात यों हुई कि एक दिन गायों का एक झुण्ड जंगल में चर रहा था। चरवाहे उन्हें जङ्गल में छोड़कर घर लौट जाते हैं। अव गायें आई ही थीं कि नचानक एक वाघ ने आक्रमण कर दिया। पहले तो गायें भागीं पर जैसे ही उन्होंने देखा कि भागने पर भी किसी न किसी की मृत्यु अवश्यम्भावी है तो सब गायें रुक गईं। उन्होंने मिलकर एक घेरा वनाया। छोटे-छोटे वछड़ों को वीच में खड़ाकर आक्रमण की राह देखने लगीं। वाघ पहले तो सक-पकाया पर उसने गायों को भोला समझकर फिर आक्रमण कर दिया पर इस वार का आक्रमण मँहगा पड़ा। १५-२० गायें सींगों से वाघ पर टूट पड़ीं। वाघ का शरीर क्षत-विक्षत हो गया और उसे भागते ही वन पड़ा।

भौलिक बुद्धि जैसी कोई चीज न होने पर भी मनुष्य को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए भावनाओं का आधार लिया जा सकता है। मनुष्य में भावनाएँ होती हैं, यही ठीक है, परन्तु पशुओं में भी भाव सम्वेदनाएँ होती हैं और वे मनुष्य से ज्यादा उन्हें अनुभव करते हैं। अन्तर है तो इतना ही कि मनुष्य भावनाओं को व्यक्त कर सकता है और पशु-पक्षी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते।

भावों की यह अभिव्यक्ति भी मनुष्य अपने परिवार और समाज से ही सीखता है। मनुष्य के संसर्ग में रहने वाले अन्य कई प्राणी, पशु-पक्षी भी अपनी भावनाओं और प्रतिक्रियाओं को प्रभावशाली ढङ्ग से व्यक्त करना सीख जाते हैं। कहा जाता है कि मनुष्य के पास अपने भावों को व्यक्त करने के लिए एक समर्थ और समृद्ध भाषा है। अन्य प्राणियों के पास कोई भाषा नहीं है। लेकिन यह एक भ्रम भी हो सकता है कि अन्य प्राणियों के पास भाषा नहीं है। हो तो उन्हें भी देखा जा सकता है। यह बात और है कि मनुष्य उनकी वाणी को सुनता तो है, परन्तु समझ नहीं सकता अथवा मनुष्य ने अपनी भाषा का आवश्यकता के अनुसार अधिक विकास कर लिया और अन्य प्राणी उस क्षेत्र में पीछे रह गये। लेकिन यहाँ आकर मनुष्य को मात खा जानी पड़ती है। कोई मनुष्य आज तक पशु-पक्षियों की भाषा में बात करने या समझने में समर्थ नहीं हो सका है—जब कि जानवर उसके भाव यहाँ तक कि उसकी भाषा को समझने का अभ्यास बहुत जल्दी कर सकते हैं।

मनःशास्त्र वेत्ता पेटरराक ने एक चिम्पाजी पाला जिसे नाम दिया 'कोको' कोको के सम्बन्ध में राक का दावा है कि वह अपनी भावनाओं को भी व्यक्त कर सकता है। कोको ने ५॥ वर्ष की आयु में सांकेतिक भाषा के ३०० वाक्य सीख लिए।

कुछ और मनोवैज्ञानिकों ने कोको की परीक्षा ली तो उसने प्रत्येक व्यवहार की प्रतिक्रिया व्यक्त की और हर्ष-उल्लास के साथ खेद व दुःख भी व्यक्त किया।

शरीर, बुद्धि, भावनाएँ उनकी अभिव्यक्ति और भाषा की दृष्टि से मनुष्य का अन्य प्राणियों की तुलना में बढ़ा-चढ़ा होना मात्र एक भ्रम है। यह आभास जरूर होता है कि वह अन्य प्राणियों से बढ़ा-चढ़ा और उन्नत है। सम्भव है यह भ्रम अन्य प्राणियों में भी हो। जिन आधारों पर मनुष्य की श्रेष्ठता सिद्ध की जाती है, वे तो झूठे हैं ही परन्तु इसका

यह अर्थ नहीं हैं कि वस्तुतः मनुष्य अन्य प्राणियों के समान ही है। निस्सन्देह मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठ और परमात्मा का सबसे बड़ा पुत्र है। क्योंकि मनुष्य जीवन एक अवसर है जिसमें यह सिद्ध किया जा सकता है कि परमात्मा ने हमें जो वस्तुएँ, जो विशेषताएँ और जो अधिकार दिये हैं उनका हम सदुपयोग कर सकते हैं और अपनी प्रामाणिकता, कर्त्तव्यपरायणता के आधार पर और अधिक उच्च स्थिति प्राप्त करने के योग्य सिद्ध कर सकते हैं।

मैत्री सद्भाव और कर्त्तव्य भावना

स्वार्थ और आत्म रक्षा की प्रवृत्ति सभी प्राणियों में पायी जाती है। यह प्रवृत्ति जीवन को प्रेम करने के फलस्वरूप ही विकसित हुई। यह बात दूसरी है कि उन प्रवृत्तियों का विकास कितने परिष्कृत अथवा विकृत रूप में होता है परन्तु यह सच है कि प्रत्येक प्राणी में एक ऐसी चेतन सत्ता विद्यमान है जो उसे निरन्तर ऊँचा उठने की प्रेरणा देती है। स्वार्थों की पूर्ति के साथ-साथ उच्च आदर्शों को जीवन में आत्मसात् करने की प्रेरणा देने वाली इस चेतन सत्ता का नाम ही अन्तरात्मा है।

मनुष्य समाज में तो कितने ही लोग,उच्च आदर्शों की पूर्ति के लिए अपने तुच्छ स्वार्थों को वलि देते देखे जा सकते हैं। समाज भी ऐसे व्यक्तियों को महामानव, देवात्मा, आदर्श, पुरुष कहकर सम्मानित करता और श्रद्धा से शीश नवाता है। अन्तरात्मा के रूप में सम्वोधित की जाने वाली यह चेतना केवल मनुष्य के पास ही नहीं है वरन् अन्य पशु-पक्षियों में भी, जिनके पास बुद्धि का अभाव है, सोचने-समझने की क्षमता नहीं है इन आदर्शों के प्रति अगाध प्रेम देखा गया है। अमरीकी लेखक एच० ए० जेज ने पशु-पक्षियों के आपसी व्यवहार का लम्वे समय तक अध्ययन किया और अपने निष्कर्मों को "विजडम ऑफ एनिमल्स' नामक पुस्तक में लिखा। इस पुस्तक में एच० ए० जेज ने कितनी ही ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया जो यह प्रमाणित करती हैं

कि पशु-पक्षियों में भी नैतिक चेतना तथा आदर्शों के प्रति प्रेम होता है और वे इन आदर्शों को प्राण-पण से निबाहते भी हैं।

एच० ए० जेज ने अपनी पुस्तक 'विजडम ऑफ एनिमल्स' में एक पालतू बिल्ली तथा एक तोते की दोस्ती का उल्लेख किया है। सामान्यतः बिल्ली तोते को देखते ही झपटने की कोशिश करती है परन्तु उक्त पुस्तक में जिस बिल्ली और तोते का उल्लेख किया गया है, वे परस्पर एक दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। घर में जब कोई नहीं होता तो बिल्ली तोते को इस प्रकार खिलाती रहती थी जैसे कोई बच्चा खिला रहा हो। एक दिन उनकी मालकिन रसोई में कोई चीज पकाने के लिए चूल्हे पर रखकर ऊपर कमरे में चली गई और वहाँ किसी काम में व्यस्त हो गयी। बिल्ली और तोता दोनों ही रसोई में खेलने लगे। खेलते-खेलते तोता पकने के लिए चढ़ाये गये बर्तन में गिर पड़ा। बिल्ली तुरन्त ऊपर वाले कमरे में दौड़ी गयी और मालकिन के कपड़े खींच कर, उछलकर व्याकुलता प्रदर्शित करने लगी। मालकिन ने झल्लाकर कहा क्या बात है ? तो बिल्ली ने उसकी ओर कातर भाव से देखा तथा रसोई की ओर चल पड़ी। पता नहीं उसकी आँखों में क्या भाव थे कि मालकिन ऊपर वाले कमरे से निकलकर रसोई की ओर बिल्ली के पीछे-पीछे चल दी। वहाँ जाकर उसने देखा कि तोता चूल्हे पर चढ़ाये गये बर्तन में गिर पड़ा है और बुरी तरह छट-पटा रहा है। माल-किन ने उसे बाहर निकाला। यह बिल्ली उस समय अपनी मालकिन को बुलाने नहीं जाती तो निश्चित था कि तोते के प्राण निकल गये होते।

पशु अपने सजातीय प्राणियों-परिवार के सदस्यों बच्चों से तो प्रेम करते ही हैं, उन्हें साथ लिए घूमते और स्नेह का परिचय देते हैं। परन्तु दूसरे पशुओं से भी प्रेम सम्बन्ध बनाने, स्नेह, सौहार्द्र बढ़ाने और मैत्री करने के उदाहरण बहुत कम देखने को मिलते हैं लेकिन मिलते अवश्य हैं। बरमिंघम (ब्रिटेन) में सर सैमुअल गुडवीईयर के

वहाँ एक टट्टू था। उसकी एक खच्चर से अच्छी दोस्ती हो गयी थी और दोनों बाड़े से निकलकर देर तक घूमा करते थे। टट्टू को एक बाड़े में रखा जाता था। बाड़े का फाटक अन्दर से एक चटखनी से बन्द होता था और बाहर से कुण्डी द्वारा टट्टू अपना सिर फाटक के ऊपर तो कर सकता था किंतु वह बाहरी कुण्डी तक नहीं पहुँच सकता था, फिर भी वह अकसर बाड़े के बाहर खुले में घूमता देखा जाता था। यह एक रहस्य ही था कि बाड़े का फटक कैसे खुल जाता था ?

एक दिन सर सैमुअल ने देखा कि टट्टू पहले भीतरी चटखनी को झटके देकर खाँचे से अलग करता और फिर रेंकना शुरू कर देता। उसकी आवाज सुनकर बाहर एक खच्चर आ जाता। खच्चर अपनी नाक से धकेलकर कुण्डी खोल देता फिर दोनों साथ-साथ घूमते।

'वेजल' नामक एक जरमन पत्रिका में एक कुत्ते और बिल्ली की मित्रता का वर्णन छपा है। कुत्ते और बिल्ली जन्म जात शत्रु होते हैं परन्तु यह कुत्ता और बिल्ली साथ-साथ खाते-पीते, उछलते-कूदते और साथ-साथ उठते-बैठते थे। इनके मालिक ने कुत्ते और बिल्ली की मैत्री को परखना चाहा। वह केवल बिल्ली को अपने कमरे में ले गया और उसे खाना दिया उसने बड़े मजे में खाना खाया। ऐसा लगा कि कुत्ते की अनुपस्थिति बिल्ली को जरा भी नहीं खली है। फिर एक तस्तरी में खाना रखकर वह तस्तरी आलमारी में रख दी गयी। आलमारी में ताला नहीं लगाया गया और बिल्ली को खुला छोड़ दिया गया। बिल्ली तुरन्त कमरे से बाहर गयी और थोड़ी देर में वह अपने साथी कुत्ते को वहाँ बुलाकर ले आयी। दोनों उस अलमारी तक गये फिर बिल्ली ने धक्के से अलमारी का दरवाजा खोला तथा उछलकर कुत्ते को वह तस्तरी दिखाने लगी। कुत्ते ने तस्तरी देख ली और उसने पंजों से दाबकर तस्तरी को बाहर निकाल लिया। पहले उसने बिल्ली की ओर भी तस्तरी खिसकाई परन्तु बिल्ली पीछे हट गई जैसे वह कह

रही हो मैं तो खा चुकी हूँ। कुत्ते ने भी जैसे बिल्ली का आशय समझ लिया और तस्तरी को अपने पंजे में दाबकर सारा खाना खा गया। जब तक कुत्ता खाना खाता रहा तब तक बिल्ली उस स्थान पर ऐसे बैठी रही जैसे वह पास बैठकर खाना खिला रही है।

एक दूसरे के प्रति प्रेम और कोमल भावनाओं का प्रदर्शन तो ठीक है पशु-पक्षी अपनी मित्रता में अवरोध उत्पन्न करने वाले कारणों को भी दूर करते हैं। दूसरों की इच्छा या अनिच्छा अथवा बहकाने पर जुड़ने-टूटने वाली मित्रता का आधार स्वार्थ ही हो सकता है क्योंकि मित्रता सच्चे हृदय से की जाती है और बाहरी कारणों से स्थिर बनती अथवा टूटती नहीं है। प्रसिद्ध अँग्रेजी साप्ताहिक 'स्टेट्‌स मेन' में एक पिल्ले और सूअर की ऐसी ही मित्रता का वर्णन छपा था। वे दोनों साथ-साथ घूमते थे। उनके स्वामी को यह पसन्द न था इसलिए उसने पिल्ले के गले में लकड़ी का एक छोटा सा किन्तु वजनदार टुकड़ा बाँध दिया, ताकि वह भाग न सके। किंतु उसने पहले ही दिन देखा कि उस पिल्ले के गले में पड़ी रस्सी कट गई थी और वह सूअर के साथ स्वतन्त्र घूम रहा था। दूसरे दिन पिल्ले के गले में चमड़े का मजबूत पट्टा डाला गया और उसमें लकड़ी का टुकड़ा जंजीर से लटकाया गया। लेकिन उस दिन भी पट्टा कट गया और लकड़ी का वह टुकड़ा कहीं गिर पड़ा। पिल्ला अपने पट्‌टे को स्वयं कदापि नहीं काट सकता था, फिर वह कैसे कट जाता है यह देखने के लिए निगरानी की गई तो पाया गया कि यह काम उसके दोस्त सूअर का ही है।

यह तो हुई सामान्य मैत्र धर्म की बातें, साथ-साथ रहने, उठने-बैठने के कारण आपस में इस तरह की घनिष्ठता को स्वाभाविक भी कहा जा सकता है परन्तु पशु-पक्षी में कर्त्तव्य भावना, विपत्तिग्रस्तों के प्रति सहयोग, सद्‌भाव तथा पीड़ित जनों से सहानुभूति और आततायी के प्रति आक्रोश की भावनायें भी खूब पाई जाती हैं। युद्ध में घोड़ों के उपयोग की चातुरी, कुत्ते की स्वामिभक्ति और दूसरे घरेलू जानवरों

का प्रेम तो आये दिन देखने को मिलता ही है। इस तरह की कई घटनायें इतिहास प्रसिद्ध भी हैं। ऐसा नहीं है कि ये पशु इस तरह का विशेष व्यवहार अपने मालिक के साथ ही करते हों। उनके अपने साथियों के प्रति भी उनका व्यवहार कई बार इतना सूझ-बूझ भरा होता है कि देख सुनकर दंग रह जाना पड़ता है।

कुछ दिन पूर्व अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र 'लाइफ' में व्यक्ति की आँखों देखी घटना का वर्णन छपा था। हुआ यह कि एक भेड़ का बच्चा किसी तरह काँटेदार झाड़ी में उलझ गया था। उसने झाड़ी से निकलने की बहुतेरी कोशिश की परन्तु बेचारा अन्ततः असफल रहा और थककर निराश हो गया। पास ही उसकी माँ भेड़ भी चर रही थी। झाड़ियों में खड़खड़ाहट सुनकर उसे न जाने क्या शंका हुई कि वह वहाँ देखने आयी। सामान्यतः इस प्रकार की आहट पाकर भेड़-बकरियाँ भाग जाती हैं परन्तु वह मादा भेड़ पास आई और अपने बच्चे को झाड़ियों में फँसा देखकर उसे निकालने की कोशिश करने लगी। वह भी विफल ही रही। निराश होने के बाद वह खेतों के पार चर रही दूसरी भेड़ों के पास गई। कुछ ही देर बाद वह एक नर भेड़ के साथ वापस लौटी। मेढ़े ने अपने सींगों से काँटेदार टहनियों को खींचना शुरु किया और कुछ ही देर में मेमना झाड़ियों से मुक्त हो गया। झाड़ियों से निकलने के बाद उसकी माँ और नर मेढ़ा उस मेमना को चाट-चाटकर जिस प्रकार प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे लगता था उसे विपत्ति से छूट जाने के लिए आश्वस्त कर रहे हों और उसका भय मिटा रहे हों।

आततायियों के प्रति रोष-आक्रोश की भावना केवल मनुष्यों में ही नहीं होती वरन् पशु-पक्षी भी अनीति का डटकर मुकाबला करते हैं। सामान्यतः कमजोर जानवर ताकतवर जानवर से डर जाते हैं और डरकर या तो भाग जाते हैं अथवा आत्मसमर्पण कर देते हैं। परन्तु कई बार वे गजब की साहसिकता तथा समझदारी का परिचय देते हुये

आततायी का डटकर मुकाबला करते हैं। जे० जे० रॉमेन्स ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि —डबलिन में उनके मकान की खिड़की के पास अबाबीलों के एक जोड़े ने घोंसला बनाया और उसमें रहने लगे। उन्हें रहते हुए कुछ ही दिन हुए थे कि एक गौरैया ने उनके घोंसले पर कब्जा कर लिया। अबाबील दम्पति को यह देखकर बड़ा गुस्सा आया।

उन्होंने गौरैया को घोंसले से निकालने की जी तोड़ कोशिश की परन्तु गौरैया अपने शक्ति मद में आकर घोंसले पर अड्डा जमाये ही रही। अन्त में अबाबील दम्पत्ति अपने कुछ साथियों को ले आयी। उन्होंने गौरैया को घोंसले से बाहर निकालने की अपेक्षा उसकी उद्दण्डता का मजा चखाने का निश्चय कर लिया था। सभी अबाबीलें मिलकर अपनी चोंचों में कीचड़ भरकर लाने लगीं और उससे घोंसला का मुँह बन्द कर दिया। गौरैया अब भीतर ही बन्द हो गई थी कुछ दिन बाद जब वहाँ से घोंसला हटाया गया तो गौरैया मरी पाई गई। बेचारी को अपने किये की सजा जीवन से हाथ धोकर भोगनी पड़ी थी।

पशु-पक्षियों द्वारा किया जाने वाला यह विशेष व्यवहार आकस्मिक ही नहीं कहा जा सकता। मानवी बुद्धि की दृष्टि से इस तरह के सम्बन्धों की रीति-नीति नैतिक चेतना के जागरण से ही विकसित होती है। मनुष्य के भीतर भी अपने मित्रों व साथियों के प्रति निर्दोष,निस्वार्थ त्याग भावना का उदय होता है। बुरे से बुरे और दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति में भी कई अवसरों पर विपत्ति ग्रस्तों के प्रति करुणा का भाव जाग उठता और कमजोर से कमजोर व्यक्ति भी अपने से बलवान आततायी से भिड़ जाने का साहस जुटा लेता है। कहने का अर्थ यह है कि नैतिक चेतना अथवा अन्तरात्मा की प्रेरणा सभी प्राणियों में होती है, वह पशु-पक्षी हो या मनुष्य-देवता। यह नैतिक चेतना अथवा अन्तरात्मा की प्रेरणा इस बात का प्रतीक है कि किसी भी प्राणी का जन्म और

जीवन निपट उसका अपना मात्र ही नहीं है, बल्कि प्रत्येक प्राणी की समष्टिगत उपयोगिता है। प्रकृति ने उसे निजी स्वार्थों को पूरा करने के अलावा समष्टिगत उपयोगिता सिद्ध करने की भी भरपूर प्रेरणा प्रदान की है। मनुष्य को मिले अतिरिक्त साधन और विशेष सुविधायें तो इन प्रयोजनों को पूरा करने के लिए विशेष दायित्वों का बोध कराते हैं। :●:

आनन्द और उन्नति का आधार

अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य ने बहुत अधिक उन्नति की है। इस उन्नति का कारण मनुष्य की बौद्धिक विशेषता ही प्रधान कारण है, जिसके बल पर वह व्यवस्था, सूझ-बूझ, उपलब्ध साधनों का नियोजन व उपयोग अधिकाधिक कुशलता पूर्वक कर पाने में समर्थ हुआ है। परमात्मा ने मनुष्य को यह सम्पदा प्रदान करने के लिए मुक्तहस्थ उदारता से काम लिया है और इस सम्पदा के बाद जिन कारणों से मनुष्य ने उन्नति की है वह है सामूहिकता तथा सहकार की प्रवृत्ति साथ-साथ रहने से, मिल-जुलकर काम करने से ही मानवीय सभ्यता और संस्कृति का विकास हो सका है।

मनुष्येतर प्राणियों में से भी जिन प्राणियों में सहयोग व सामूहिकता की प्रवृत्ति पाई जाती है वे क्षुद्र होते हुए भी सुरक्षित और व्यवस्थित जिन्दगी जीते हैं। उनका अस्तित्व भी उतना ही जीवन्त बना रहता है। और कई प्राणी जो शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की

तुलना में काफी वढ़े-चढ़े हैं, चतुरता भी उनमें पर्याप्त है, पर वे परस्पर सहयोग करने की वृत्ति से रहित होने के कारण न तो उन्ननि ही कर सके और न अपने अस्तित्व को ही सुरक्षित रख सके। सिंह जो किसी जमाने में भारी संख्या में सर्वत्र पाया जाता था, शक्ति की दृष्टि से वह सर्वोपरि कहलाता था, अब धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोता चला जा रहा है। जिस तेजी से उसकी संख्या घट रही है उसे देखते हुए पशु-विद्या के ज्ञाता यह सम्भावना मानने लगे हैं कि कहीं सौ दो सौ वर्षों के अन्दर ही सिंह का अस्तित्व इस पृथ्वी पर से पूर्णतया समाप्त न हो जाय। जिन जीवों में परस्पर सहयोग की न सही साथ-साथ झुण्ड बनाकर रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है वे इस कठिन समय में भी कम से कम अपने अस्तित्व की रक्षा किये हुए हैं। मनुष्य बन्दर को बहुत सताता है, वह उसकी आँखों में खटकता है, फिर भी परस्पर सहकारिता के बल पर वह घुड़की देने की अब भी हिम्मत करता है। कुत्ते परस्पर लड़ते हैं इसलिए उनका नाम ही तिरस्कार सूचक बन गया। बन्दर अब भी पुजते हैं और देवता कहलाते हैं।

जड़जगत में सङ्गठन की शक्ति को हम आसानी से देख सकते हैं। चीटियों का झुण्ड जब चिपट जाता है तो बड़े साँप को भी जीवित खा जाता है। टिड्डियों का दल, मनुष्य की रखवाली को व्यर्थ बनाता हुआ सारी फसल को चौपट कर जाता है। हाथियों और बन्दरों के झुण्ड निर्भयता पूर्वक जिधर चाहते हैं उधर बढ़ते जाते हैं, उनमें से प्रत्येक को यह विश्वास होता है कि कठिन समय आने पर साथियों का सहयोग सहज ही उपलब्ध हो जायगा। झुण्ड बाँधकर चरने वाली गायें आक्रमणकारी बाघ की दाल नहीं गलने देतीं।

सूत के एक धागे को कोई बच्चा भी आसानी से तोड़ सकता है पर जब वे सौ पचास की संख्या में इकट्ठे होकर रस्सी बन जाते हैं तो बड़े पहलवान के लिए भी उसे तोड़ना कठिन होता है। एक सींक का कोई मुल्य नहीं, उससे किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती, पर

जब कितनी ही सींकें मिलकर एक बुहारी बन जाती हैं, तो उससे घरों की सफाई बड़े सुचारु रूप में होती रहती है। छोटी-छोटी पानी की बूदें जब तक अलग हैं तब तक उन्हें जमीन सोख लेती है, हवा सुखा देती है लेकिन जब वे इकट्ठा हो जाती हैं तो नदी, तालाब, समुद्र के रूप में अपनी प्रचण्ड शक्ति का परिचय देती हैं। जो जमीन अलग-अलग बूंदों को क्षण भर में सोख लेती थी वही अब तालाब के तल में या किनारे पर पतली कीचड़ के रूप में परास्त पड़ी दिखाई पड़ती है। एक सिपाही कुछ नहीं कर सकता पर जब उसका पूरा दल सेना के रूप में कहीं चढ़ाई करता है तो सामने वालों के छक्के छूट जाते हैं।

कुछ डाकू एक गिरोह बनाकर जब सक्रिय होते हैं तो बड़े प्रदेश की लाखों जनता को आतंकित कर देते हैं। थोड़े से सङ्गठित षड्यन्त्रकारी बड़ी से बड़ी सुव्यवस्था को खतरे में डाल देते हैं। थोड़े से गुण्डे-बदमाशों की चाण्डाल चौकड़ी से भले आदमी डरते और दबते रहते हैं। इस प्रभाव में उन व्यक्तियों का मूल्य नहीं, उनकी सामूहिकता ही प्रधान है। ये डाकू, गुण्डे, बदमाश, षड्यन्त्रकारी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से वैसे ही होते हैं जैसे अन्य साधारण नागरिक, उनमें डराने जैसी कोई बहुत बड़ी विशेषता नहीं होती। वे अकेले हों तो उनकी मरम्मत आसानी से हो सकती है पर चूंकि उनका एक गिरोह होता है, यह गिरोहबन्दी ही खतरे का—डरने का प्रधान अस्त्र है। देशों और जातियों का इतिहास भी इसी प्रकार का है। इतिहास साक्षी है कि जो लोग सङ्गठित थे वे उन्नति के मार्ग पर बढ़ते गये और जो असङ्गठित थे, फूट में ग्रस्त थे, उन्हें अवनति एवं पराजय का मुख देखना पड़ा।

भारत किसी समय में बड़ा गौरवशाली, शक्ति सम्पन्न एवं उन्नति के शिखिर पर पहुंचा हुआ देश था, तब यहाँ के लोग सङ्गठन का महत्त्व समझते थे, एक दूसरे के दुःख-सुख में साथी ही न थे, वरन्

परस्पर सहायता करके एक दूसरे को आगे बढ़ाने से सुख-सन्तोष अनुभव करते थे। 'संसार की सारी प्रगति औरस मृद्धि संगठन के आधार पर अवलम्बित है' इस गुरु मन्त्र को यहाँ का हर नागरिक जानता था, और उसी आदर्श के अनुरूप अपनी सारी योजनाऐं बनाता था। यह प्रवृत्ति जहाँ बढ़ती है, वहाँ स्वर्गीय सुख-शान्ति का स्वयम् ही अवतरण होता है जैसा कि पूर्व काल में इस देश में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता था। धीरे-धीरे जब इस मनोवृत्ति का ह्रास हुआ, लोग व्यक्तिगत लाभ को, स्वार्थपरता को महत्त्व देने लगे, परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, शोषण, अपहरण, लूट-खसोट, छल-कपट, फूट-फिसाद का बढ़ना भी स्वाभाविक था — यह विष बीज, जहाँ बोये गये होंगे वहाँ सत्यानाश के फल ही उगेंगे। असङ्गठित, फूट-फिसाद में ग्रस्त, आपापूती और ईर्ष्या, द्वेप के दलदल में जब हम फँस गये तो मुट्ठी भर विदेशी आक्रमण चढ़कर दौड़े और इतने विशाल देश पर जादू की तरह कब्जा कर लिया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, असङ्गठित समाजों में सदा से यही दुर्गति होती आई है।

मनुष्य में सहयोग की भावना ही परस्पर श्रद्धा अनुशासन, प्रेम और कर्त्तव्यनिष्ठा के भाव भरती है। सहानुभूति-विहीन जीवन कष्ट और उलझन का ही नहीं हिंसा और बर्बरता का भी जीवन बन जाता है। ऐसा तो असभ्य जङ्गली जानवर तक नहीं पसन्द करते मनुष्य को क्यों पसन्द करना चाहिये? रूसी प्राणी विशेषज्ञ श्री साइवर्ट सोफ मैदानी क्षेत्र में रहने वाले जानवरों का अध्ययन कर रहे थे—तब उनके सामने एक विचित्र घटना घटित हुई। उन्होंने देखा एक सफेद पूँछ वाला उकाब पक्षी आकाश में मँडरा रहा है। आधा घण्टे तक वैसे ही मँडराते रहने के बाद उसने एक प्रकार की ध्वनि की। यह आवाज तेज थी लगता था उसने किसी को दौड़कर आने के लिये पुकारा हो। वह आवाज सुनते ही दूसरे उकाब ने आवाज की और दौड़कर उसके पास आ गया। इस तरह दस बारह उकाब वहाँ एकत्रित हो गये।

फिर जाने क्या बात हुई वे सब गायब हो गये। दोपहर के लगभग उकावों का पूरा झुण्ड उसी स्थान पर उतरा। साइवर्टसोफ ने ऐसी पोजीशन ली जहाँ से उनकी सारी हरकत देखी जा सके। सभी उकाव एक घोड़े की लाश के पास पहुँचे। सबसे पहले बूढ़े उकावों ने उसका मांस खाया फिर वे हटकर निगरानी करने लगे और तब दूसरे उकावों ने मांस खाया। उकावों की, इस सामाजिक भावना ने साइवर्ट सोफ को बहुत प्रभावित किया।

वेहरिंग के काफिले ध्रुव प्रदेश में चला करते। प्राकृतिक जीवन के अभ्यस्त यह काफिले वहाँ की सारी कठिनाइयों का मुकाबला बड़ी आसानी से कर लेते हैं किन्तु जो सबसे बड़े आश्चर्य की बात है वह यह है कि यह काफिले वहाँ की छोटी-छोटी लोमड़ियों से मात खा जाते हैं। उनकी इस आप-बीती को सुप्रसिद्ध लेखक स्टेलर ने वेहरिंग के काफिलों का युद्ध कहा है और बताया है कि प्रारम्भ में यह काफिले जिस स्थान पर डेरा डालते वहाँ की लोमड़ियाँ आतीं और उनका खाना चुरा ले जातीं। निदान खाने को पत्थरों से ढककर रखा जाने लगा। पत्थर भी इतने वजनदार रखे जाते कि बड़ी से बड़ी लोमड़ी भी उन्हें उठाकर अलग न कर सकती। काफिले वाले बड़े असमञ्जस में थे कि तब भी उनका खाना चोरी गया मिलता और पत्थर उस स्थान से दूर फेंका मिलता।

ऐसा लगा कि कोई बड़ा जानवर आता है अतएव ताक की गई। बात बड़ी विचित्र निकली, एक साथ कई लोमड़ियों का झुण्ड आया उनमें से एक ऊँची टेकरी पर खड़ी हो गई, एक दूसरी तरफ। यह थी चौकीदार उनका काम किसी भी सम्भावित हमले की सूचना अपने साथियों को देना होता है। शेष लोमड़ियाँ आगे बढ़ीं और एक साथ शक्ति लगाकर वजनदार पत्थर को उठाकर अलग कर दिया और खाना चुरा ले गईं।

अब काफिले वालों ने एक के ऊपर एक पत्थर रखकर ऊँचा

खम्भा उठाया और उसके ऊपर खाना रखा पर लोमड़ियों से वह ,तब भी नहीं बच सका। अब लोमड़ियों ने अपनी पीठ पर चढ़ाकर किसी चुस्त लोमड़ी को ऊपर चढ़ा दिया उसने ऊपर से खाना गिराया। गिरे हुये खाने को सबने उठाया और फिर ऊपर चढी लोमड़ी को उतारा और दूर एकांत में जाकर सारा खाना बाँटकर खा लिया।

इस घटना की समीक्षा करते हुये स्टेलर ने लिखा है यह आश्चर्य की बात है कि लोमड़ी जैसे छोटे जीव ने सहयोग और सहकारिता के महत्त्व को समझा और उसका लाभ उठाया जब कि मनुष्य जैसा बुद्धिशील प्राणी परस्पर स्पर्द्धा रखता, ईर्ष्या, द्वेष और मनोमालिन्य रखता है यह वृत्तियाँ उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। सुख और शांति, समृद्धि और सम्पन्नता का राजमार्ग यह है कि मनुष्य भी मिल-जुलकर रहना सीखें, अपने हित को दूसरे के हित से जुड़ा हुआ मानकर एक दूसरे के साथ सहयोग करना सीखें यही वृत्ति सामाजिक जीवन को व्यवस्थित बना सकती है।

आनन्द और उन्नति का आधार

सहयोग और सामूहिकता के आधार पर 'निश्चत व सुरक्षित जीवन ही' आनन्द तथा उल्लास का आधार बनता है। इतना ही नहीं इन तत्त्वों की महत्ता समझने वाले लोग देश और जातियाँ अपराजेय होती हैं। मनुष्य जाति की समग्र सुख-समुन्नति साधन में नहीं भावनाओं के विकास में है। भावनाओं के विकास द्वारा ही कोई मनुष्य अभाव-पूर्ण जीवन में भी आनन्द और उल्लास, हँसी और खुशी प्राप्त कर सकता है।

बुद्धि का अनुदान औरों को भी

प्रकृति ने विकास और सुरक्षा की व्यवस्था के लिए आवश्यक विभूतियों का वितरण करने में कहीं कोई कृपणता नहीं बरती है। कहा जा सकता है कि बौद्धिक क्षमतायें और सहयोग भावना केवल मनुष्यों

में ही हैं परन्तु यह कहना लक्ष्य से मुँह मोड़ना होगा। क्योंकि प्रकृति ने अपनी अन्य सन्तानों को भी उसी उदारता से ये विभूतियाँ प्रदान कर रखी हैं।

सुप्रसिद्ध जीव शास्त्री वेल्ट एक वार चींटियों के सामाजिक जीवन का अध्ययन कर रहे थे। एकाएक मस्तिष्क में एक कौतूहल जागृत हुआ यदि इन चींटियों को मकान छोड़ने को विवश किया जाये तव यह क्या करेंगी। वेल्ट चींटियों की बुद्धि की गहराई और उसकी सूक्ष्मता की माप करना चाहते थे अतएव चींटियों के एक विल के पास ऐसा वातावरण उपस्थित किया जिससे चींटियाँ आतङ्कित हों। पास की जमीन थपथपाना, पानी छिड़कना, विचित्र शोर करना आदि। चींटियों ने उसी तरह परिस्थिति को गम्भीर मान जिस तरह अतिवृष्टि, तूफान, समुद्री उफान जैसे प्राकृतिक कौतुक मनुष्य को डराने, धमकाने और ठीक-ठिकाने लाने के लिये वड़ी शक्तियाँ करती हैं और मनुष्य उनसे डर जाता है।

जिस स्थान पर विल था आधा फुट पास ही वहाँ एक छोटी सी ढाल थी। सर्वेयर चींटियाँ चटपट वाहर निकलीं और उस क्षेत्र में घूमकर तय किया कि ढलान के नीचे का स्थान सुरक्षित है। उनके लौटकर भीतर विल में जाते ही मजदूर गण सामान लेकर भीतर से निकलने लगे। वाहर आकर चींटियों ने दो दल वनाये, एक दल अपनी महारानी को लेकर नीचे उतर गया और खोजे हुए नये स्थान पर पहुँचाकर विल के वाहर पंक्तिवद्ध खड़ा हो गया मानो वे सब किसी विशेष काम की तैयारी करने वाले हों।

सामान ज्यादा हो और दूर की यात्रा हो तो मनुष्य बैलगाड़ी, रेल, मोटर और हवाई जहाज का सहारा लेते हैं। माना कि चींटियों के पास इस तरह के वाहन नहीं हों यह भी सम्भव है कि वे आदिम युग के पुरुषों की तरह समझदार हों और यांत्रिक जीवन की अपेक्षा प्राकृतिक जीवन वेहतर मानती हों अतएव उन्होंने वाहन न रचे हों

पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उनमें परिस्थितियों के विश्लेषण और तदनुरूप क्रिया की क्षमता नहीं होती। चींटियों का जो दूसरा दल ऊपर था समय और बोझ से बचने के लिये ऊपर से सामान लुढ़काना प्रारम्भ किया। नीचे वाली चींटियाँ उसे सँभालती जा रही थीं और बिल के अन्दर पहुँचा रही थीं। ऐसा लगता था जैसे बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में हेलीकोप्टर से अन्न के बोरे गिराये जा रहे हों।

अपने गाँव-नगर के निवासियों को हर चींटी भली प्रकार पहचानती है। एक भी बाहर वाली घुस आवे तो उसे तुरन्त पहचान लिया जायगा और मार-कूटकर उसे वापिस खदेड़ दिया जायगा।

एक भी चींटी कभी बेकार नहीं बैठती। उन्हें आराम हराम है। वे समूह बनाकर काम करती हैं और हर दल अपने क्रिया-कलाप में कीर्तिमान स्थापित करने के लिये पूरे उत्साह, धैर्य और सन्तोष के साथ लगी रहती हैं। मानो कर्म की सुव्यवस्था ही एक मात्र उनकी महत्त्वाकाँक्षा हो। गौर से देखें तो प्रतीत होगा कि उनका एक दल एक रास्ते जा रहा है तो दूसरा दल उसी मार्ग से वापिस लौट रहा है। लौटने वालियों के मुँह में अनाज, कीड़ा, घासफूस, मिट्टी आदि कुछ न कुछ जरूर होगा। यह संग्रह अपने लिए नहीं पूरे परिवार के लिए करती हैं। खाद्य संग्रह, गृह-निर्माण प्रायः इस भाग दौड़ का उद्देश्य होता है। घयलों और बीमारों की सेवा-सहायता से लेकर अण्डे बच्चों के परिपोषण तक के लिए भी उनकी गति-विधियाँ चलती हैं। बिल में पानी भर जाने या कोई सङ्कट उपस्थित होने पर वे नया स्थान ढूँढ़ने, बनाने और स्थानान्तरण के साथ-साथ संग्रहीत माल असबाब ढोने की आपत्ति कालीन व्यवस्था भी बनाती हैं। कहीं चीनी का बड़ा भण्डार दीख पड़े या कोई स्वादिष्ट कीड़ा हाथ लग जाय तो फिर दैनिक कार्यों को बदलकर वे फिर जल्दी-जल्दी उस लाभ से लाभान्वित होने का प्रयत्न करती हैं। माल मिलते ही वे तत्काल उसे खाने नहीं बैठ

जातीं वरन् उसमें से क्वचित जलपान करके विल में जमा करने के लिए जुट जाती हैं और सुविधानुसार उसे स्वाद और सन्तोष पूर्वक खाती हैं।

चींटियों के तीन वर्ग हैं (१) रानियाँ (२) राजा लोग (३) बाँदियाँ। रानी एक ढेर में चार पाँच से अधिक नहीं रहतीं। वे औसत चींटी से मोटी तगड़ी होती हैं, उनका कार्य केवल बच्चा उत्पन्न करना होता है। प्रायः सारा समय उनका इसी में व्यतीत होता है। अस्तु बाहर निकलने, घूमने की भी उन्हें फुरसत नहीं होती। नर्सें, दाइयाँ, तसोइया, चौकीदार उनके पास मुस्तैदी से अपनी ड्यूटी पर तैनार रहते हैं।

अण्डों को सेने का काम बाँदियाँ करती हैं। प्रसव होते ही वे उन्हें सुरक्षित स्थान पर ले जाती हैं और जब तक बच्चे बड़े न हो जायँ तब तक बाँदियाँ उनका अपने निज के बच्चों जैसा ही लालन-पालन करती हैं। अण्डे में से एक नन्हीं सी 'इली' निकलती है यह जमीन पर पड़ी कुन-मुनाती रहती है। भूखी होने पर मुँह खोलती है तो मौसियाँ तुरन्त उनके मुँह में कोमल और सुपाच्य ग्रास रख देती हैं। उपयुक्त समय पर वे इन बच्चों को सहारा देकर घुमाने भी ले जाती हैं।

बाँदियाँ न विवाह करती हैं न बच्चे देने के झंझट में पड़ती हैं। उन्हें नियत कर्त्तव्य पालन में गृहस्थी बसाने से अधिक सन्तोष रहता है।

राजाओं के पङ्ख उगते हैं वे विलों से निकल कर उड़ान भरते हैं। जैसे ही वे उड़े कि पक्षी उन पर झपट पड़ते हैं और बात क बात में उन्हें उदरस्थ कर जाते हैं। कुछ के पंख टूट जाते हैं और भारी होने के कारण घर लौटने में असमर्थ रह कर प्राण गँवाते हैं। जो लौट आते हैं वे अपने पंख नोंच कर फेंक देते हैं और अन्य साथियों की तरह रहने में ही कल्याण मानते हैं। व्यक्तिगत महत्त्वाकाँक्षा कितनी

मँहगी पड़ती है उसे वे अनुभव द्वारा भली प्रकार सीख लेते हैं और फिर अकेले आकाश छूने की सनक को सदा के लिए त्याग देते हैं।

चींटियाँ सदा एक ही स्थान पर नहीं रहतीं। जब उनका नगर बस जाता है उनमें निवास, आवास, गोदाम, चिकित्सालय, विश्रामगृह, सड़कें, गलियाँ आदि सभी कुछ बन जाता है और खाने के लिए पर्याप्त खाद्य भण्डार जमा हो जाता है तो नर चींटियाँ यह अनुभव करती हैं कि अब दल में निठल्लापन आ जायगा और आरामतलबी से श्रमशीलता की आदत घट जायगी। इस सङ्कट को टालने के लिए तो राजा लोग नये नगर बसाने, नया क्षेत्र ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ते हैं और जब उपयुक्त भूमि मिल जाती है तो रानियों को साथ लेकर नई जगह में चले जाते हैं। बाँदियाँ बफादार साथी की तरह उनके पीछे चल पड़ती हैं और नये सिरे से नया नगर बसाने और आवश्यक उपकरण जुटाने में लग जाती हैं, इस प्रकार अमीरी और आरामतलबी से उत्पन्न होने वाले सङ्कटों से वे बचकर अपनी कर्मनिष्ठा बनाये रहती हैं। पुराना नगर छोड़ने और नया देश बसाने का उनका यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है, वे एक जगह बहुत समय नहीं रहतीं।

अमेरिका में पाई जाने वाली अट्टा चींटी खेती-बाड़ी भी करती हैं, वह अपनी रुचि के बीज जमा करके पास की नम जगह में गाढ़ती हैं और उगने वाली फसल की निराई-गुड़ाई करती रहती हैं। जब फसल पकती है तो उसका एक एक दाना वे अपने बिलों में जमा कर लेती हैं। ये चींटियाँ पास-पड़ौस के किसानों की फसल पर भी चढ़कर पके हुए बीज तोड़ती और ढोकर घर में जमा करने में भी प्रवीण होती हैं।

चींटी ही नहीं दीमक भी अपने आकार-प्रकार को देखते हुए इतनी कर्मशील और दूरदर्शी है कि उसके क्रिया-कलाप से मनुष्य कुछ

सीख समझ सकता है और अपनी वैयक्तिक एवं सामाजिक स्थिति में उपयोगी सुधार कर सकता है।

दीमकों में अधिकांश अन्धी होती हैं तो भी उनकी घ्राणशक्ति लगभग आँखों जैसी ही सहायता करती है और वे विना भटके अपना जीवन-क्रम चलाती रहती हैं। आँखों वाली दीमकें उनकी कठिनाई को समझती हैं और स्वयं हटकर उनके लिये रास्ता देती हैं और समय पर उन्हें अतिरिक्त सहायता पहुँचाती हैं।

दीमकों के बिलों के ऊपर जो मिट्टी का आच्छादन होता है वह इतनी मजबूती और कुशलता से वना होता है कि वर्षा का पानी उसमें प्रवेश करके उनमें निवास करने वाली दीमकों की कोई क्षति नहीं कर पाता। छोटे-मोटे नाले, झरनों के ऊपर से वे ऐसे मजबूत पुल बनाती हैं कि वर्षों तक उस रास्ते उनका आना-जाना इधर-उधर हो सके। इस प्रकार के जल अवरोध को दूर कर सकने में भी सफल होती हैं। छोटी-सी दीमक की यह गति-विधियाँ लम्बे-चौड़े आकार वाले मनुष्य के लिए अनुकरणीय हैं।

सहयोग, सङ्गठन और सहकार की विशेषताओं के अलावा अन्य जीव-जन्तुओं में विद्यमान वौद्धिक क्षमतायें इस वात की भी प्रतीक हैं कि सृष्टि के कण-कण में एक ही चेतन तत्त्व समाया है अन्यथा आकृति, प्रकृति, शक्ति व शरीर के संरचना में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हुए भी सभी प्राणियों में व्यवस्था, बुद्धिमत्ता और सूझ-बूझ के तत्त्व समान रूप से विद्यमान होते हैं।

गरिमा अन्य प्राणियों में भी

इस दृष्टि से ब्राजील की एक चींटी को अद्‌भुत आश्चर्य कहा जा सकता है जो कृषि पर ही निर्भर रहती है। सामान्य चींटियों की तरह यह दूसरों की कमाई पर निर्भर नहीं रहतीं। यह कुछ पेड़ों से गिरी पर टूटी हुई पत्तियाँ ले आती हैं और उन्हें अपने विल में रखतीं हैं। किसान जिस तरह अपने खेतों को अच्छी तरह जोतता, घास-फूस निकालकर

बीज बोता है, उसी प्रकार यह चींटियाँ भी इन पत्तों का भली प्रकार निरीक्षण करती हैं, कहीं कोई कीड़ा या रोगाणु तो नहीं हैं। यदि पत्ता अच्छा हुआ तो वे इसमें एक विशेष प्रकार की फफूँद बोती हैं। पैदा की हुई इस फफूँद से ही इनका आहार चलता है। चींटी में स्वावलम्बन के साथ गुण-दोष विवेचन की क्षमता आश्चर्यजनक है।

यदि कोई चींटी बँटवारा करना चाहे तो जिम्मेदार चींटियाँ उसके लिये नया बिल ढूँढ़ देती हैं। उसे विदा करते समय उन्हें यह ध्यान रहता है कि कहीं इसे आहार के अभाव में भूखों न मरना पड़े इसलिये ये फफूँद का एक कण भी उसे देती हैं। इस कण को लेकर चींटी दूसरे बिल में जाती है और वहाँ अपनी कृषि जमाकर सुखपूर्वक रहने लगती हैं। तुच्छ जीव में मनुष्य से बढ़कर विवेक भी कम विस्मय बोधक नहीं।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्रिश के शिष्य डा० लिंडावर ने मधु-मक्खियों का बहुत दिन तक अध्ययन किया और बताया कि उनकी प्रवृत्तियाँ मानव-जीवन की गति-विधियों से विलक्षण साम्य रखती हैं। जिस प्रकार घर के मुखिया के आदेश पर घर के सब काम व्यवस्था पूर्वक चलते हैं, उसी प्रकार मधु-मक्खियों में एक रानी मक्खी होती है, छत्ते की सारी व्यवस्था का भार उस पर ही होता है। छत्ते के सब निवासी उसके निर्देशों का अच्छी प्रकार पालन करते हैं : इन मक्खियों में विभाग बँटे हुए होते हैं, कुछ मजदूर होती हैं, जिनका काम छत्ते को बनाना, टूट-फूट जोड़ना, छत्ते में कोई मर जाये, उसे वहाँ से ले जाकर श्मशान तक पहुँचाना यह सब काम मजदूर करते हैं। कुछ सैनिक मक्खियाँ होती हैं, इनका काम है रानी मक्खी और छत्ते की बाहरी आक्रमणकारियों से सुरक्षा। मनुष्यों की फौज में कुछ सिपाही कायर और डरपोक हो सकते हैं, किन्तु यह दुश्मन के संघर्ष में अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करतीं। ये उनसे मृत्यु पर्यन्त लड़ती हैं। कुछ मक्खियों का काम फूलों

से पराग लाना और उससे शहद बनाना होता है। इस तरह जिसको जो काम मिला होता है, वह वही काम दत्त-चित्त करती रहती हैं।

छत्ते में दूसरी रानी मक्खी पैदा हो जाती है तो उसके लिये परिवार न्यारा कर दिया जाता है। रानी मक्खी अपने लिये उपयुक्त स्थान की खोज में चलती हैं पर वह एक दिन में नहीं मिल जाता। रानी मूर्ख नहीं होती, वह यद्यपि नन्हा-सा कीट ही है। कुछ समय के लिये वह किसी पेड़ पर बसेरा डाल लेती है और अपने सभासदों को आदेश देती है कि वे ऐसा स्थान ढूँढ़ें जहाँ जल की समुचित मात्रा उपलब्ध हो, पराग के लिये फूल और घना जङ्गल हो तथा स्थान ऐसा हो जहाँ छत्ते की नींव जमाने में दिक्कत न हो। आमतौर पर यह जहाँ पहले छत्ते लगे होते हैं, उन स्थानों पर ही नया छत्ता बनाते हैं, उससे मोम की दीवार वृक्ष से चिपकाने में सुविधा रहती है।

स्थान के चुनाव में कई बार इनमें मतभेद हो जाता है। यदि दो-चार मक्खियों में ही विरोध रहे तब तो वे स्वयं अपनी भूल मानकर छत्ते में मिल जाती हैं पर यदि मतभेद इतना हो कि दो दलों में विभक्त होने की स्थिति आ जाये तो रानी मक्खी अपनी समझदारी से काम लेती है, वह जिस पक्ष को उचित मानती है, उसे लेकर नये स्थान में चली जाती है और बाद में अपने विशेष दूत भेजकर अपने बिछुड़े साथियों को भी वहाँ बुला लेती है। इस स्थिति में विरोधी पक्ष चुपचाप चला आता है और अपने दल में सम्मिलित होकर काम करने लगता है। डाक्टर लिण्डावर के अनुसार मक्खियों में इससे भी विलक्षण मानसिक गति-विधियाँ चलती हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

यह दो उदाहरण इसलिए दिये गये हैं कि मनुष्य यह न मान ले कि न्याय, नीति, ईमानदारी, विकास आदि की बौद्धिक क्षमतायें केवल उसे ही मिली हैं, जीवों में जीव अति सभ्य संसार में रहने का दावा कर बैठें तो उनकी बात को असत्य सिद्ध करना कठिन हो सकता है।

ये उदाहरण इस बात के प्रतीक हैं कि संसार के सम्पूर्ण जीवों में व्याप्त आत्म-चेतना एक ही है। सबमें एक ही प्रकार की न्यूनाधिक नई-नई प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। मनुष्य केवल इसलिए अपवाद है कि उसमें प्रत्येक जीवन की सम्भावनायें विलक्षण रूप से भरी गई हैं। वह अपने आप में एक स्वतंत्र सत्ता है, इसलिए उसे यह सोचने, समझने का अवसर मिलता है कि हमारे जन्म का उद्देश्य क्या है और उस उद्देश्य को कैसे सार्थक किया जा सकता है।

प्रो० जे० बी० एस० हाल्डेन का कथन है - "एक लाख वर्ष पूर्व कोई ऐसा एकाकी मनुष्य का जोड़ा था, जो अकेला एक ही था, उसी से आज के सम्पूर्ण मनुष्यों का आविर्भाव हुआ है। हम सब मनुष्य दूर के रिश्ते में सगे भाई हैं और सगे भाइयों जैसा व्यवहार ही हमें करना चाहिए।" और आगे तत्त्व-दर्शन की ओर बढ़ें तो डा० हाल्डेन के ही मतानुसार आज से लगभग ७००० लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी में कोई एक प्राणी था, चाहे वह प्रोटोजोआ (एक कोषीय जंतु) था या फिर कोई आत्म-चेतना सम्पन्न प्राणी, उसी से सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणियों का आविर्भाव हुआ। इस तरह हमें मात्र मनुष्यों में ही भाई चारे का सम्बन्ध नहीं देखना चाहिए वरन् सम्पूर्ण प्राणियों में एक ही आत्म-चेतना का परिष्कार देखना चाहिए। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति मैत्री, करुणा और आत्म-भाव तत्त्व-दर्शन का वह सिद्धान्त है, जो हमें शीघ्र ही ईश्वर से मिला देता है, जब सब अपने ही भाई-बन्धु, नाती-पोते, पिता-बाबा, माँ-बहन, बुआ-भतीजे हैं तो किसके साथ छल-कपट, अनीति और अन्याय किया जाये।

अपने परिवार के लिए हम अपनी आजीविका का ९९ प्रतिशत भाग लगाते हैं और थोड़ा-सा अपने लिये रखते हैं, क्योंकि हमें अपने प्रियजनों की सेवा से सुख, सन्तोष मिलता है। यदि इस दायरे को बढ़ाकर हम प्राणिमात्र के प्रति आत्म-भावना और समता का विस्तार कर लें और उसे समष्टि भाव से निष्ठापूर्वक पूरा करते रहें तो यह

निश्चय है कि हमारे सुख-सन्तोष और आनन्द की सीमा भी बढ़ी हुई होगी। प्रेम का पूरा आनन्द एक दो के साथ प्रेम-भाव से ही नहीं मिल सकता, उसका जितना अधिक विस्तार कर सकते हैं, अर्थात् घृणास्पद से भी यदि प्रेम करने का स्वभाव विकसित कर पायें तो अपने जीवन में बहुत अधिक आनन्द और आल्हाद की अनुभूति कर सकते हैं।

इस विचारणा का आधार यह है कि सम्पूर्ण जीव-जगत् एक ब्रह्म से स्फुरित हुआ है। इसी का नाम तत्त्व-दर्शन है। सनातन धर्म और संस्कृति का विकास इस तत्त्व-दर्शन से विकसित होने के कारण ही वह अकाट्य है। हमारे भारतीय धर्म ग्रन्थ कहते हैं --"प्रारम्भ में एक ही ब्रह्म था उसकी इच्छा हुई – 'एकोऽहं बहुस्यामः' मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ। उसकी इस इच्छा शक्ति ही का विस्तार अनेकानेक ब्रह्माण्ड और अनेक जीव-जन्तुओं में दिखाई देता है। सम्पूर्ण विविधता में भी वह एक ही अविनाशी अक्षर तत्त्व समाया हुआ है 'बहुनामह एक मैव' संसार में जो कुछ दिखाई देता है, उस सबमें एक मैं ही चेतन रूप में व्याप्त हूँ। जब हम इस बात को समझ लेते हैं, तब हमें प्राणियों के साथ व्यवहार के लिये ही एक नया दृष्टिकोण नहीं मिलता वरन् मनुष्य-जीवन की वर्तमान गति-विधियों को भी हम दोषपूर्ण देखने लगते हैं और यह मानने को विवश होते हैं कि हमारे जीवन में जो अभाव, अशक्ति और अज्ञान है. उसे भौतिक पदार्थों से नहीं दूर किया जा सकता वरन् आत्मा को विराट्—परमात्मा बनाकर ही हम कष्टों से मुक्ति और सच्चे आनन्द की उपलब्धि कर सकते हैं।

योगवशिष्ठ, गीता आदि ग्रन्थों में सम्पूर्ण जीवों में एक ही शक्ति और चेतन सत्ता के विद्यमान होने के वैज्ञानिक रहस्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। पैङ्गलोपनिषद् में ब्रह्म के द्वारा सृष्टि रचना पर बड़ा सूक्ष्म प्रकाश डाला गया है और बताया गया है कि एक ही तत्त्व किस प्रकार विभिन्न जीव और पदार्थों का अस्तित्व धारण करता चला गया। पैङ्गल ऋषि महर्षि याज्ञवल्क्य के पास जाते हैं और तप करते हैं। १२

[जीव जन्तु बोलते भी हैं, सोचते भी हैं

वर्ष तक तप करने से जब उनकी आत्मा शुद्ध हो जाती है, तब वे महर्षि से कहते हैं 'परम रहस्य कैवल्य मनुब्रूहीति पप्रच्छ' भगवन् आप मुझे परम रहस्यकारी 'कैवल्य' का उपदेश करें। महर्षि याज्ञवल्क्य ने उन्हें बताया सृष्टि के आदि में केवल सत् ही था। वही नित्य, मुक्त, अविकारी, सत्य, ज्ञान, आनन्द से पूर्ण सनातन एक मात्र अद्वितीय ब्रह्म है, उसी से लाल, श्वेत, कृष्ण, गुण वाली प्रकृति उत्पन्न हुई और यह चराचर जगत् बन गया।

शेर बहुत हिंसक जन्तु है, किन्तु समझ, सौन्दर्य और वात्सल्य जैसे गुण उसमें भी विद्यमान हैं। वे अपने पारिवारिक जीवन में बहुत निष्ठावान होते हैं। आजन्म गृहस्थ जीवन की मर्यादाओं का पालन करते हैं और सभी पत्नियाँ एक बार प्रणय सूत्र में आबद्ध होने के पश्चात् अपने पति के साथ सम्बद्ध बनी रहती हैं। शेर और शेरनी का कदाचित ही कभी तलाक होता है। बच्चों को वे दोनों मिल-जुलकर बड़े लाड़-चाव से पालते हैं। प्रसिद्ध जीव शास्त्री श्री सलीम आलिम ने अनेक जीवों के अध्ययन के बाद बताया कि ब्रिटेन में पाये जाने वाले अधिकांश छोटे पक्षी एक पत्नी व्रत जीवन-यापन करते हैं। योरुप में पाया जाने वाला स्टारलिंग जो एक प्रकार से मैना की आकृति का पक्षी है, दिसम्बर के महीने में इसके विनाश के दिन होते हैं, कई बार तो आधे स्टारलिंग तक मर जाते हैं, उनमें से कईयों के जोड़े बिछुड़ चुके होते हैं। इस आघात को सहन करना और प्रेम विहीन जीवन-यापन करना स्टारलिंग के लिये कठिन पड़ता है, इन दिनों उनका बिलखना देखकर भावुक मनुष्यों से भी ऊँची इनकी मनःस्थिति प्रतीत होती है।

हमारे देश में पाये जाने वाला बया पक्षी दाम्पत्य-जीवन में निष्ठावान् नहीं रहता और इस भूल का दण्ड भुगतता है। वह कई-कई विवाह करके अपने घोंसले में बहुधा कई-कई धर्म-पत्नियाँ ले आता है और फिर उसकी पत्नियों में परस्पर द्वेष-भाव, मार-पीट, काट-कलह होती है, उस मार-धाड़ में उसकी भी काफी मरम्मत होती रहती है

और बया अपनी भूल पर पछताता रहता है।

यह उदाहरण जहाँ यह बताते हैं कि मनुष्य जैसी बुद्धि शीलता, चतुरता, संसार के सब प्राणियों में होने से वे सब एक ही जाति के जीव हैं, सब एक आत्मा के अंश हैं और उन्हें एक ही सार्वभौम नियम का पालन कर सुखी रहने और तोड़ने पर दुःख पाने को वाध्य होना पड़ता है।

डा० जे० डी० हक्सले चिड़ियों के जीवन के अध्ययन में बड़ी रुचि रखते थे। एक विलायती पक्षी क्रमटी का विवरण देते हुए उन्होंने लिखा - "यह चिड़िया वसन्त आगमन पर विवाह की तैयारी करती है। नर एक स्थान पर बैठकर गाना गाता है। वह पेड़ों की टहनियाँ आदि एकत्रित करके रखता है और यह दिखाने का प्रयत्न करता है, मानो उसे उपार्जन, संरक्षण एवं गृहस्थ-निर्माण की कला की समुचित सामर्थ्य उपलब्ध है। मनुष्य को भी तो विवाह से पूर्व अपनी क्षमता की ऐसी ही परीक्षा कर लेनी चाहिए, यदि उसमें उतनी योग्यता न हो तो विवाह की जिम्मेदारी वहन करने का दुस्साहस नहीं ही करना चाहिए।

मनुष्य मादा क्रीमटो नर के पास से गुजरती है और उसकी योग्यता परख लेती है, तभी उसका प्रणय स्वीकार करती है। कई दिन मादा परखती रहती है, कहीं उसे झूठे प्रलोभन तो नहीं दिये जा रहे हैं। जब पूरा विश्वास हो जाता है, तभी नर-मादा दनों मिलकर घोंसला बनाने की तैयारी करते हैं। अण्डे सेने का काम भी दोनों मिल-जुलकर बारी-बारी से करते हैं।

ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जो यह बताते हैं कि संसार में जो भी विविधता है शरीर और प्रकृति की है। चेतना सबमें एक है, मनुष्य की यदि कुछ विशेपता है तो यही कि उसमें विवेक भी है और वह अपनी चेतना को समझने और उसे सम्पूर्ण प्राणियों की आत्म-चेतना के साथ जोड़ते हुए, विश्व-विराट् की अनुभूति की क्षमता से सम्पन्न है, यदि वह इस उद्देश्य को पूरा कर लेता है तो इसी नर शरीर से नारा-यण जैसी पूर्णता में परिणित हो सकता है।

[जीव जन्तु बोलते भी हैं, सोचते भी हैं

वे भी बोलते हैं, कोई समझे तो

भाषा और साहित्य द्वारा अपने विचार अभिव्यक्त करने और अपनी संवेदना से दूसरे साथियों को परिचित कराने की क्षमता सृष्टि के किसी भी जीवधारी को नहीं मिली है। केवल मनुष्य ही ऐसा है जिसे यह सुविधा प्राप्त हुई है। किसी भी प्राणी को अपने समीपवर्ती या दूरवर्ती किसी अन्य प्राणी से कुछ कहना, बताना हो तो वे न बोलकर बता सकते हैं और न लिखकर। यह विभूति तो परमात्मा ने अपने उत्तराधिकारी राजकुमार मनुष्य को ही दी है।

यह मान्यता तभी तक सही है, जब तक कि मनुष्य अपने इस विशेष रूप से उपलब्ध उपहार का उपयोग मानवेतर जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट दिशा, आत्मशोध, आत्मकल्याण और लोक-मंगल के लिए करता है। विचार, चिन्तन, मनन और प्रतिपादन की विशेषता मनुष्य को छोड़ कर और अन्य किसी भी प्राणी को प्राप्त नहीं है। यह सारी योग्यतायें मनुष्य को ही मिली हैं, यदि वह उनका उपयोग अपने स्वार्थ तक ही

सीमित न रखकर पुण्य परमार्थ में करता है, तव तो यह ईश्वरीय अनुदान भी सार्थक है यदि वह केवल लौकिक, भौतिक और इन्द्रिय सुखों की पूर्ति तथा विकास में ही इस योग्यता को खर्च करता है तो यही मानना पड़ेगा कि उसमें और अन्य क्षुद्र कहे जाने वाले जीव-जन्तुओं में कोई अन्तर नहीं है।

यह वात जीवशास्त्र में अब तक हुई उपलब्धि का अध्ययन करने से भी सिद्ध हो जाती है क्योंकि मनुष्येतर प्राणियों की भी अपनी भाषा है। वह मूक तो है पर मनुष्य को मिली वौद्धिक क्षमता से उनकी क्षमता कुछ कम नहीं है। वे अपनी इस भाषा का उपयोग करके भी मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक व्यवस्थित, अनुशासित और सुख-शांति पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

व्यवस्था बुद्धि. जीव-जन्तुओं की विलक्षण बुद्धिमत्ता –

प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक रोमेन्स को एक वार वड़ा कौतूहल हुआ कि एक खोजी मधुमक्खी सैकड़ों मील दूर जाकर कोई पुष्पोद्यान अथवा जलाशय देखकर आती है उसकी सूचना वह अन्य मधुमक्खियों को कैसे देती है? उन्होंने शीशे के छल्ले बनाकर मधुमक्खी के छत्ते में फिट कर दिये फिर कुछ मधुमक्खियों को विशेष प्रकार के रंगों से रंग दिया तव कहीं उनकी विचार विनिमय प्रणाली का अध्ययन करना सम्भव हुआ।

एक मधुमक्खी उड़ी और किसी दिशा में चली गई। वहाँ उसे ऐसे फूलों के पौधे मिले जो फूले भी थे और जिनमें पराग भी प्रचुर मात्रा में था। उसने कुछ पराग-कण इकट्ठे किए और मुँह में दबाये छत्ते को लौट आई। अन्य मधुमक्खियाँ उसे ऐसे घेरकर खड़ी हो गईं जैसे वह सब समाचार पाने के लिए उतावली हों। अव वह मधुमक्खी नाचने लगी वह एक गोलार्द्ध में नाचती थी और रह-रहकर नाचने की दिशा वदल देती थी उससे अन्य मधुमक्खियों ने पता लगा लिया कि फूल और पराग यहाँ से किस दिशा में कितनी दूर पर हैं। नाच वन्द करके उसने अपनी मूँछ सभी साथियों की मूँछ से स्पर्श करा कर कुछ

संकेत दिया और फिर वह स्वयं भी अपने काम में जुट गई। यह नहीं कि उसने लोगों को सूचना देना भर पर्याप्त समझा हो वह तो उसका थोड़ी देर का अपना सामुदायिक कर्त्तव्य था उसे पूरा करने के बाद भी वह अपना काम करती है जब कि मनुष्य है कि एक काम मिल गया फिर वह दूसरा काम छूना भी पसन्द नहीं करेगा। हमारी वहुमुखी प्रतिभा के द्वार इसीलिए वन्द रहते हैं कि हम अपनी क्षमताओं को क्रियान्वित करने में भी लज्जा अनुभव करते हैं!

श्री जगपति चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक "जीव-जन्तुओं की बुद्धि" में इन संकेतों को स्पष्ट करते हुए वताया है कि यदि मधुमक्खी धीमे वेग से नाचती है तो उसका अर्थ यह होता है कि पराग की मात्रा जिसकी उसने खोज की है थोड़ी है। इसलिए वहाँ से थोड़ी मधुमक्खियाँ जाती हैं पर यदि नाच का वेग तेज है तो वह पराग की मात्रा अधिक होने का सूचक माना जाता है और मधुमक्खियाँ अधिक आ जाती हैं। यदि फूल १०० गज की दूरी पर हैं तो वह गोलार्द्ध में नाचती है, यदि उनकी दूरी २–३ मील है तो वह अँगरेजी के आठ वनते हैं उस शक्ल में नाचते हुए चक्कर काटती हैं। यह भी है कि वह एक मिनट में जितने वार चक्कर काटती है दूरी का अनुमान उसी से होता है। उदारण के लिए यदि वह एक मिनट में २२ वार नाचती है तो फूल ३०० गज दूर होंगे। यदि दूरी ३००० गज है तो चक्करों की संख्या ११ ही होगी। इसी प्रकार वह दिशा भी नाचते हुए दायें-वायें दिशा काटकर व्यक्त करती है। आश्चर्य तो इस वात का है कि यह प्रशिक्षण उन्हें किन्हीं माता-पिता से न मिला होकर जन्मजात अन्तःप्रेरणा के रूप में मिलता है और यह बताता है कि अभिव्यक्ति चेतना का नैसर्गिक गुण है। इस गुण का उपयोग वे न केवल आहार जुटाने में वरन् छत्ते में अनुशासन शत्रुओं से रक्षा एवं पारिवारिक व्यवस्थायें जुटाने में करते और वताते हैं कि मनुष्य भी यदि अपनी भाषा, साहित्य, कला का उपयोग तुच्छ भौतिक हितों में ही करता है तो वह हमसे पिछड़ा है क्योंकि हम उसकी अपेक्षा

कहीं अधिक व्यवस्थित और शान्ति में है।

प्रसिद्ध जीव शास्त्री प्रो॰ हीथ ने दीमक के जीवन का गहन अध्ययन किया है उन्होंने "जीव जन्तुओं की दुनिया" पुस्तक में उनके बीच प्रयुक्त होने वाली सांकेतिक भाषा के बड़े गूढ़ रहस्यों का भी पता लगाया, उन्होंने लिखा है कि दीमक जिस किले (वाम्बी) में रहती है उसमें कई प्रकार के कमरे होते हैं। राजा रानी एक विशेष भवन में रहते हैं शेष सब छोटे-छोटे कमरों में। कोई दीमक भूखी होती है तो वह मजदूर दीमक के सींग को स्पर्श करती है। यही उनका भोजन माँगना है। यदि भोजन माँगने वाला बच्चा है और वह भविष्य में उस किले का राजा बनने वाला हुआ तो उसकी भोजन माँगने की प्रक्रिया कुछ भिन्न रौबदार होगी। मजदूर दीमक अविलम्ब अपने मुँह से कोई तरल पदार्थ निकाल देती है जो उस उत्तराधिकारी राजकुमार के आहार के काम आता है। यदि माँगने वाला कोई मजदूर हुआ तो मजदूर दीमक अपने पिछले हिस्से से आँतों से खाना निकाल कर उसे देगा। यों दीमक की सार्वजनिक जीवन व्यवस्था बड़ी ही सुचारु होती है तथापि वह एक कीड़ा है और उसकी सारी चेष्टायें खाने-पीने और परिवार के भरण-पोषण, रक्षण तक ही सीमित हैं मनुष्यों को मिली इन कलाओं का उपयोग भी यदि इन्हीं बातों तक सीमित रहे तो उसे भी दीमक की तरह का ही एक कीड़ा समझना चाहिए।

चींटी अपने विचार प्रगट करने और एक दूसरे को संवाद पहुँचाने में चाहे कितनी मूक भाषा का प्रयोग करती हो उसकी सूक्ष्मता और बुद्धिमत्ता का अनुमान मेजर हैंगस्टन के इस प्रयोग से ही लगाया जा सकता है। मेजर हैगस्टन ने एक बार चींटी के बिल के पास खाने का एक छोटा सा टुकड़ा रख दिया जो उनके अनुमान से एक चींटी नहीं उठा सकती थी। चींटी आई उसने उसे देखा और तुरन्त बिलमें पहुँची और अपने साथ १० मजदूर चींटियाँ ले आई ग्यारहों ने उसे उठाया और घर ले गईं इस बीच उन्होंने गुड़ के ढेले को पतली पेन्सिल

जैसा बनाकर उसके तीन टुकड़े किये। पहला टुकड़ा आधा इञ्च का था, दूसरा पौन इञ्च और तीसरा टुकड़ा लगभग डेढ़ इञ्च का था। एक चींटी आई उसने तीनों टुकड़ों को देखा, इस बीच और भी कई चींटियाँ आईं और उन टुकड़ों को भिन्न-भिन्न दिशाओं और दूरियों में पड़ा देख गईं।

थोड़ी देर पीछे चींटियों का समूह निकला जिसमें १६१ चींटियाँ थीं। बिल से निकलते ही उनमें से २८ चींटियाँ पूर्व की ओर चली गईं, जहाँ सबसे छोटा टुकड़ा पड़ा था, शेष में से ४४ दक्षिण की ओर जिधर दूसरा टुकड़ा पड़ा था, ८६ चींटियाँ उधर गईं जिधर सबसे बड़ा टुकड़ा था। तीनों दल बात की बात में तीनों टुकड़े उठा ले गए और मेजर साहब खड़े सोचते रह गये। यदि इन चींटियों में अनुभव करने, सोचने और अपने मन की बात को सांकेतिक रूप से दूसरी चींटियों को समझा देने की योग्यता न होती तो इतना व्यवस्थित कार्य वे कैसे कर लेतीं। मनुष्य तो उससे भी सरल और स्पष्ट बुद्धि का स्वामी होकर भी उतनी व्यवस्था से नहीं रह पाता। परलोक की बात तो दूर अपनी बुद्धि का सही उपयोग न करके वह अपनी शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय सभी क्षेत्रों में अव्यवस्थायें ही फैलाता और अशांति ही बढ़ाता है। यदि अपनी बौद्धिक क्षमता का उपयोग मनुष्य ने मूकपशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं की तरह केवल लौकिक हितों के लिये भी व्यवस्थित ढङ्ग से किया होता तो सार्वजनिक क्षेत्र आज इतना दूषित और उलझा हुआ न होता। मनुष्य-जीवन आज दुःख, कष्ट, पीड़ा और कलह-क्लेश का अखाड़ा बना हुआ है वह इस बौद्धिक सामर्थ्य के दुरुपयोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

गीध अशुभ पक्षी माना जाता है पर अपनी भावनायें, अपने विचार तो वह भी व्यक्त कर लेता है। एक गीध जब कोई मरा हुआ पशु देखता है तो किसी ऊँचे वृक्ष की छतपर बैठकर एक विशेष प्रकार से "चैंव चैंव" की आवाज करके गर्दन घुमाकर संकेत करता है। इस संकेत

में मरे पशु की क़िस्म, स्थान और कितने गीधों के लिये भोजन उपलब्ध है वह सारी बातें कह देता है। इस आवाज को जो भी दूसरा गीध सुनता है चलने की तैयारी करने से पूर्व उसी तरह का संकेत अपने पीछे वाले गीधों के लिये कर देता है। अपनी जाति के प्रति आत्मीयता का यह भाव मनुष्य में भी आ गया होता तो आज लोग जाति-पाँति, ऊँच-नीच, वर्ग-भेद को लेकर झगड़ते नहीं। गीध एक-एक कर इकट्ठा होने लगते हैं जितने आवश्यक थे उतने गीध आ जाने पर सब प्रथम संकेत देने वाले को संकेत देकर आगे चलने को कहते हैं क्यों कि उसे उस समय उस पशु के मांस का सबसे नरम भाग खाने का अधिकार होता है।

हम यह सोचते हैं कि अन्य जीव-जन्तु हमारी तरह बोल नहीं सकते तो उनमें विचार करने की क्षमता का अभाव होगा। बुद्धि उनमें भी होती है। बात-चीत वे भी कर लेते हैं। "खग जानै खग ही की भाषा – ताते उमा गुप्त कर राखा" वाली बात है।

ये जीव-जन्तु हमें गूँगे, बहरे दिखाई पड़ते हैं पर वस्तुतः वैसा है नहीं। वे आपस में घुल-घुल कर बातें करते हैं, एक दूसरे के साथ विचार-विनिमय करते हैं और पारस्परिक सहयोग जुटाने में उस संभाषण का प्रयोग करते हैं। यह अलग बात है कि उनके सम्भाषण उपकरण मनुष्यों से भिन्न हैं और उनका शब्द कोष हमारे उच्चारण विधान से मेल नहीं खाता।

मिशिगन विश्वविद्यालय के कीट विज्ञानी डा० ब्राडॉक के अनुसार कीड़े-मकोड़े भी परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं; यदि उनमें यह क्षमता न रही होती तो उनका जीवित रहना ही असम्भव हो जाता, पक्षी निरर्थक चह-चहाते मालूम पड़ते हैं पर वस्तुतः वे अपनी प्रसन्नता, व्यथा, योजना, जानकारी आदि की सूचनायें अपने साथियों को देते हैं। ध्वनि के साथ-साथ उनकी मनःस्थिति घुली होती है जिसकी जानकारी उस वर्ग के अन्य पक्षी प्राप्त करते हैं और उससे लाभ उठाते

हैं। खतरा किसी एक को मालूम पड़ जाय तो वह अपनी भाषा में अपने साथियों को सूचित कर देता है, फिर सब मिलकर उसी का उच्चारण करते हैं ताकि न केवल साथियों को आगाही हो जाय वरन् शिकारी शिशु को उनकी सतर्कता एवं आक्रामक सम्भावना के कारण आक्रमण करने का इरादा ही बदलना पड़े।

छोटे कीड़ों की भाषा नहीं होती वे अङ्ग स्पर्श से विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। यह स्पर्श ऐसे ही निरर्थक नहीं होता वरन् उसकी एक व्यवस्थित संकेत शृङ्खला होती है; जिससे उस वर्ग के कीड़े भली प्रकार परिचित होते हैं। एक दूसरे के किस अङ्ग को किस पकड़ के साथ छुए और क्या हलचल करे इस प्रक्रिया से वे साथियों को अपने मन की बात बता देते हैं। ध्वनि, स्पर्श, दृष्टि और हलचल के माध्यम से छोटे जीवों का आदान-प्रदान चलता है। हम अपने स्तर पर उन्हें मूक कह सकते हैं पर वस्तुतः बोलते वे भी हैं। उनका उच्चारण इतना मन्द होता है कि हमारे कान उन्हें सुन-समझ नहीं सकते, फिर भी वे जिह्वा से न सही शरीर के विभिन्न अङ्गों की हलचलों या रगड़ से ऐसी क्रमबद्ध ध्वनि उत्पन्न करते हैं जिसे उनकी भाषा कहा जा सकता है।

बरसात में मेंढकों की टर्र-टर्र अकारण नहीं होती इसमें वे अपनी मानसिक स्थिति का परिचय देते हैं। टिड्डे अपने पङ्खों को पिछले पैरों से रगड़कर ध्वनि उत्पन्न करते हैं, झींगुर की टाँगें मनुष्य द्वारा बजाये जाने वाले किसी वाद्य यन्त्र की तुलना का ध्वनि प्रवाह निसृत करती हैं। जर्मन कीट विज्ञानी फेवर ने टिड्डों की भाषा खोजने के लिए योरोप भर के जङ्गलों की खाक छानी है। उसने टिड्डों के लगभग ४०० ध्वनि संकेत और चौदह स्तर के प्रणय निवेदन टैप किये हैं। इन ध्वनियों को टैप पर सुनकर भी अन्य कीड़े उस जानकारी के अनुरूप ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। योरोप के ग्राइलस, कम्पेस्टस, ग्रावाइमैकुलेटस आदि झींगुर जातियाँ अपने अन्य साथियों की

तुलना में अधिक मुखर होती हैं। मादा और नर के स्वरों में अन्तर होता है इससे वे लिंग भेद को आसानी से पहचान लेते हैं और तदनुरूप शिष्टाचार वरतते हैं।

मधुमक्खी विशेषज्ञ मार्टिन लिण्डेयर ने मधुमक्खियों के आदान-प्रदान के माध्यम को नृत्य माना है। वे अनेक तरह की कला-वाजियों के नृत्य करती हैं और संग्रहीत सूचनाओं की जानकारी छत्ते के अन्य साथियों को देती हैं। इसी आधार पर उनका झुण्ड मकरन्द प्राप्त करने के लिए उपयुक्त दिशा की जानकारी पाता है और कूच करता है। कुछ मक्खियाँ इस खोज-कला में और सूचना-सम्वाद देने की कुशलता में बहुत प्रवीण होती हैं, वे प्रायः इसी कार्य को रुचि पूर्वक करती रहती हैं।

प्रो० रावर्ट हिण्डे के अनुसार पक्षी ही नहीं कीड़े भी आँखों के इशारे से अपने वहुत से मनोभाव साथियों को वता देते हैं। यों आँखों की हलचल और चितवन में भी थोड़ा वहुत अन्तर पड़ता है पर पुतलियों की सम्वेदनशीलता में वैसा वहुत कुछ रहता है जिससे एक दूसरे की भावनाओं का आदान-प्रदान हो सके। इस दृष्टि से छोटे प्राणी मनुष्यों से पीछे नहीं हैं। यों मनुष्य भी आँखों और पुतलियों के सहारे अपनी गुह्य मनः स्थिति को जाने-अनजाने साथियों पर प्रकट करते रहते हैं।

कार्लवाल फ्रिच ने मधुमक्खी नृत्य की अनेक मुद्राओं के फिल्म लिये हैं और बताया है कि उनकी क्या हलचल, कितनी दूर, किस दिशा में, किस स्तर की, क्या स्थिति है इसकी सूचना ठीक प्रकार देती हैं। मधुमक्खियों की इस संकेत भाषा के आधार पर उनने परीक्षा की तो उनका प्रतिपादन शत-प्रतिशत सही निकला।

जुगनू की तरह और भी कई कीड़े अपने शरीर से प्रकाश निकालते हैं। कैल कीड कीड़ा तो रेलवे सिगनलों की तरह लाल, हरी रोशनी जलाता-बुझाता रहता है। यह प्रकाश सदा एक जैसा नहीं

चमकता उसके जलने-बुझने, मन्द एवं तीव्र होने में जो बारीक अन्तर रहते हैं उससे वे अपनी जाति वालों से आपसी वार्तालाप करते रहते हैं।

कितने ही जीवों का काम उनकी घ्राण शक्ति से ही चलता है। जीवनोपयोगी कितनी ही जानकारियाँ वे वस्तुओं एवं जीवों के शरीरों से निकलने वाली गन्ध के आधार पर ही प्राप्त करते हैं। इतनी ही नहीं उनकी विभिन्न शारीरिक, मानसिक परिस्थितियों से विभिन्न प्रकार की गन्धें निकलती हैं, उस वर्ग के प्राणी इन्हें सूँघकर एक दूसरे की स्थिति का परिचय प्राप्त करते रहते हैं। रति प्रयोजन के लिए उनके शरीरों से विशेष रूप से तीव्र गन्ध निकलती है, यही वह सूत्र है जो उनकी वंश रक्षा की व्यवस्था जुटाये रहता है। बहुत छोटे अदृश्य कीड़े तो इस गन्ध के आदान-प्रदान से ही गर्भ धारण कर लेते हैं। ई० ए० विल्सन के अनुसार चींटियाँ अपने शरीर से एक रस निकालती और टपकाती चलती हैं ताकि अन्य चींटियाँ उनके आह्वान पर विशेष प्रयोजन के लिए उसी रास्ते को सूँघती हुई बढ़ती चली आवें। चींटियों का पंक्तिबद्ध चलना इसी गन्ध के आधार पर होता है।

गंध के इस स्रवण और उसके माध्यम से पूर्ववाली चींटियों द्वारा छोड़े गये संकेत चिह्नों को चींटियों का संवाद या संदेश प्रेषण और ग्रहण ही कहा जाना चाहिए। यह तो सांकेतिक भाषा हुई। जीव-जन्तुओं के स्थिर संवाद की एक अलग ही प्रणाली है। उनकी अपनी भाषा है इसमें कोई संदेह नहीं है।

संवाद उनमें भी होता है—

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कीट-पतंग गंध छोड़ते और सूँघते हैं। उनकी वाणी की अपेक्षा घ्रणाशक्ति अधिक विकसित होती है। फलतः एक दूसरे के शरीरों से विभिन्न प्रकार की जो गंध समय-समय पर निकलती रहती है, उनके सहारे वे यह जान लेते हैं कि दूसरे सजातीय किस स्थिति में हैं और वे किस प्रकार के सहयोग की अपेक्षा

करते अथवा जानकारी देते हैं।

जीवों की भाषा – विलक्षणता

जिन्हें वाणी प्राप्त है वे अपने थोड़े से शब्दों के सहारे ही काम चला लेते हैं। अपने हर्षोल्लास अथवा दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति वे उतने से उच्चारण में ही कर लेते हैं। इससे उनका जी हलका होता है, उत्साह मिलता है तथा दूसरे साथियों को अपनी ही तरह उत्तेजित करके सम्वेदना उभारना सम्भव होता है। इससे उनका स्नेह, सौजन्य एवं सहयोग निखरता है। चिड़ियाँ जब चहचहाती हैं उससे उनके शरीर का अंग सञ्चालन भी होता है। इस उच्चारण और सञ्चालन को देखकर उनके सजातीय यह पता लगा लेते हैं कि उसका अभिप्राय क्या है ? और उस जानकारी को प्राप्त करने के उपरान्त उन्हें क्या करना चाहिए ?

यही बात पशुओं के सम्बन्ध में है। उनके शब्द और भी स्पष्ट होते हैं। झींगुर, मच्छर, मक्खियाँ जैसे कीट-पतंग भी शब्दोच्चारण करते हैं। मेंढ़क जैसे छोटे जीव भी कर्णकटु शब्द बोलते हैं। हलकी आवाज तो प्रायः सभी जीवों की होती है। जिह्वा अथवा दूसरे अवयवों के सहारे वे ध्वनि करते और अपनी मनःस्थिति का अन्यों को परिचय देते हैं।

हम मनुष्य यदि अन्य प्राणियों की भाषा समझने का प्रयत्न करें, उनकी अभिव्यक्तियों और आवश्यकताओं को अनुभव करें तो निस्संदेह अपने परिवार का अबकी अपेक्षा असंख्य गुना विस्तार हो सकता है और उसी अनुपात से आत्मीयता का क्षेत्र बढ़ सकता है। अभी तो ४०० करोड़ मनुष्यों के ही एक मानव समाज से हमारा परिचय है, उनमें भी भाषा की एकता से ही घनिष्ठता एवं सहयोग का द्वार खुलता है। भाषा की दृष्टि से जिनके बीच आदान-प्रदान का माध्यम अभी नहीं बना है वे मनुष्य समाज के सदस्य होते हुए भी एक दूसरे से अपरिचित जैसी स्थिति में पड़े

रहते हैं।

मानवी भाषाओं के बीच एकता के क्षेत्र बढ़ाने के प्रयत्न चल रहे हैं। यदि प्रणियों की भाषा को समझने का क्षेत्र बढ़ सके तो जीव-धारियों की दुनिया अब की अपेक्षा बहुत बड़ी हो सकती है। विकसित प्राणी अविकसित्तों को ऊँचा उठने का सहारा दे सकते हैं और अविक-सितों के सहयोग का बहुत बड़ा लाभ मनुष्य जैसे विकासवानों को मिल सकता है। प्रयत्न करने पर और ध्यान देने पर हम जीवधारियों की भाषा समझने में बहुत कुछ प्रगति कर सकते हैं।

बछड़े के रँभाने से पता चलता है कि उसकी जननी गाय उससे दूर चली गई है। चिड़ियों के नन्हें बच्चे भी माँ के दूर जाते ही चीं-चीं कर उठते हैं। पास आने पर पंख फड़-फड़ाकर प्रसन्नता प्रदर्शित करते हैं। कुत्ते का पिल्ला माँ की उपस्थिति में हर्ष-सूचक ध्वनि भिन्न रीति से करता है और दूर जाने पर रोने की आवाज भिन्न रूप से। दोनों स्थितियों में उसका स्वर एवं भंगिमा भिन्न-भिन्न होती है।

इससे स्पष्ट है कि भाव-सम्प्रेषण के लिए पशु-पक्षी भी विशिष्ट ध्वनि-क्रमों का निश्चित विधि से उच्चारण व प्रयोग करते हैं। यानी उनकी अपनी एक भाषा है। वे अपने वर्ग के जीव की भाषा ही समझते हैं। कुत्ता-कुत्ते की, गाय अपने बछड़ों, बैल व अन्य गायों की, चिड़ियाँ-चिड़ियों की भाषा अच्छी तरह समझने में समर्थ हैं।

बाघ की दहाड़ स्वर 'ओं घ् ¨ ह' अथवा 'ऊं ¨ घ् ¨ ¨ह' जैसा होता है। गुर्राहट 'गर्र र्रं र्रं' जैसी होती है। ऋतुमती शेरनी शेर को बार-बार पुकारती है। शेर उसे सुनकर वहीं से प्रत्युत्तर देता है और दोनों एक दूसरे के समीप पहुँचते हैं। प्रणयकेलि के समय दोनों बहुत ही तेज आवाज करते हैं, मानो प्रचण्ड युद्ध हो रहा हो।

बाघ, चीते या तेंदुएँ बड़ी सतर्क चाल चलते हैं। उनकी पहचान का सर्वोत्तम माध्यम काकड़, चीतल, साँभर और हिरन की उच्च ध्वनियाँ ही हैं। काकड़ की आवाज 'बोक्' जैसी होती है, नर-चीतल

भारी, दीर्घ-सी ध्वनि से सतर्क करता है, साँभर तीव्र शङ्ख ध्वनि की तरह 'पैंडु' की आवाज करता है और श्रोता को सहसा चौंका देता है। बाघ, चीता, बघेरा या तेंदुआ की उपस्थिति का सर्वाधिक प्रामाणिक अनुमान इन्हीं आवाजों से होता है। साथ ही उत्तेजित वन्दरों की 'खो–खो' या लंगूर की 'खुर्र-खुर्र' भी इन हिंसक प्राणियों की उपस्थिति का संकेत है।

यह हुई वन की 'भाषा'। वन की 'लिपि' को भी समझना आवश्यक है। नरम या आर्द्र मिट्टी पर पशुओं के पद-चिह्न ही यह लिपि है। उनसे वहाँ से गुजरने वाले पशु का वर्ग, आकार, गुजरने का समय तथा दिशा का सूचक होता है। वनवासी इन चिह्नों को पहचानने में प्रवीण होते हैं। पटु शिकारी भी इसमें दक्ष होते हैं। जरा-सी दबी घास या टूटी हुई डालें, सूखी कड़ी भूमि में भी पशु के जाने-आने की दिशा का पता चल जाता है।

वन में पशु-पक्षियों की बोलियों के भी अभिप्राय को समझना आवश्यक है। एक दूसरे को अपनी उपस्थिति की सूचना देने के लिए अथवा मौज की लहर में हाथी जोरदार स्वर में चिंघाड़ते हैं इं ······ था र। जब कि भय या उत्तेजना की स्थिति में वे फटी-सी और तीखी ध्वनि करते हैं—"पैं ऐं ऐं"। कभी-कभी हाथी 'गु र्रं-र्रं र्रं' ध्वनि से गुर्राते हैं, जो क्रोध का परिचायक है। मानो कोई मोटर-इन्जिन चालू किया गया हो।

हाथी कभी-कभी फुफकारते हैं तेजी से। एक-दो फर्लांग दूर भी फुफकारने पर लगता है मानो १५-२० फुट दूर से ही ध्वनि आ रही हो।

शहर और नगरों की होने वाली हलचलों का आभास हवा में गूँजने वाले शोर-शराबे से लग जाता है। कार, स्कूटर, ट्रक आदि के सड़क पर से गुजरने से उनकी आवाजों में रहने वाले अन्तर से यह पता चलता है कि कौन वह गुजरा। ताँगा, इक्का, धकेल, बैलगाड़ी, ऊँट-

गाड़ी के आवागमन की बात बिना उन्हें देखे ही मात्र ध्वनि के सहारे जानी जा सकती है। अगल-बगल में बच्चों की उछल-कूद और बड़ों की भगदड़ में जो अन्तर होता है उसे कमरे में बैठकर भी बिना देखे जाना जा सकता है। हवा की तेजी - वर्षा की गति आदि की हलचल कान से सुनकर आँखें भींचे-मींचे भी जानी जा सकती है। हवा में गूँजने वाली ध्वनियों के सहारे हम सहज ही समीपवर्ती वातावरण का अनुमान लगा सकते हैं।

जङ्गल की भी अपनी भाषा है। वन्य पशु-पक्षियों की उपस्थिति तथा हरकतों का अनुमान उनके संसर्ग से उत्पन्न होने वाली आवाजों के आधार पर सहज ही जाना जा सकता है। वन क्षेत्र के निवासी उनके अभ्यस्त भी होते हैं। शिकारियों को भाषा की अच्छी जानकारी होती है। जङ्गलों में निवास अथवा काम करने वाले यदि जङ्गल की भाषा न समझें तो उनके सामने प्राण संकट खड़ा रहेगा। अस्तु जिस प्रकार शहर, गाँव में रहने वालों को उस क्षेत्र के निवासियों से सम्पर्क साधन के लिये स्थानीय भाषा की जानकारी प्राप्त करनी होती है, उसी प्रकार जिनका वन्य प्रदेशों और उनमें रहने वाले प्राणियों से वास्ता पड़ता है उन्हें "जङ्गल की भाषा जानना भी आवश्यक होता है।

ग्रीष्म ऋतु में ताजे पद-चिह्न भी तेज हवा द्वारा धूल से भरकर पुराने लगने लगते हैं और शरद ऋतु में नरम मिट्टी पर छायादार हिस्से में कुछ पुराने निशान भी ताजे जैसे दीखते हैं। अभ्यास से सही पहचान की क्षमता आती है।

बाघ और तेंदुऐ के पद-चिह्नों का कुत्तों के पद-चिह्नों से साम्य होता है। पर बाघ और तेंदुऐ के पैरों के चिह्न कुत्ते के पग-चिह्नों से चौगुने से भी ज्यादा बड़े होते हैं। कुत्ते के पद-चिह्नों में पंजों के आगे नाखून के चिह्न दीखते हैं, बाघ-तेंदुऐ के नाखून चलते समय सिमटकर पंजों की गद्दियों में छिप जाते हैं। अतः उनके निशान नहीं होते। बाघ-तेंदुऐ के पग-चिह्न गोल से होते हैं, सामने की ओर चार छोटी अंगु-

लियों के चिह्न तथा पीछे गद्दी का तिकोना-सा निशान होता है।

हाथी के पग-चिह्न चक्की के पाट से होते हैं। हाथी के पैर के नाखूनों का निशान जिस ओर दीखे, वही उनके जाने की दिशा होती है। घास के पौधे की गिरी हुई या झुकी स्थिति से भी हाथी के जाने-आने की दिशा ज्ञात हो जाती है। टूटी घास के हरे या सूखे होने से गुजरने के समय का अनुमान हो जाता है। युवा हाथी-हथनियों के तलवे साफ और पद-चिह्न भी साफ होते हैं, किन्तु प्रौढ़ वृद्ध हाथियों के पद-चिह्नों में उनके पैरों की बिवाइयों का निशान स्पष्ट दीख जाता है।

भालू के पिछले पैरों का निशान मानव पग-चिह्नों की ही तरह, किन्तु कुछ कम लम्बा होता है। एड़ी और पंजों के बीच की दूरी भी कम होती है। अगले पैरों के निशान लगभग आयताकार होते हैं। भालू के पग-चिह्नों में नाखूनों के निशान भी दीखते हैं।

टूटी शाखाएँ; टूटे या चर्वित घास, पेडों की छिली हुई-सी, नीचे गिरी छाल आदि से हाथियों के आने-जाने के बारे में बहुत कुछ पता चल जाता है।

नमकीन मिट्टी वाले स्थान में 'चाटन' के आस-पास छिपकर पशु देखे जा सकते हैं। पशुओं की लीद, मेंगनी इत्यादि से भी उनके बावत कई सूचनाएँ मिल जाती हैं। इसी तरह भालू, चीते, बाघों द्वारा पेड़ों के तनों पर पैना करने के लिए नाखूनों की रगड़ के चिह्नों से भी कई बातें जानी जाती हैं।

जब हाथी किसी शाखा को तोड़ता है, तो 'कड़ाक' या 'करड़ड़' की लम्बी खिचती-सी ध्वनि होती है। ऐसी ध्वनि की शीघ्र-शीघ्र एवं बार-बार आवृत्ति हो तो अनुमान होता है कि वहाँ हाथियों का पूरा समूह है। बन्दर जब डाल तोड़ते हैं, तो ध्वनि नीचे से नहीं, पेड़ की ऊँचाई से आती है और वह हल्की तथा छोटी होती है। कुल्हाड़ी से काटी जा रही लकड़ी से 'खट-खट' आवाज आती है और उसमें नियमितता होती है। कठफोडा जब लकडी में चोंच मारता है, तो सर्वथा

भिन्न 'खुट-खुट' की ध्वनि होती है।

जैसे जङ्गल में एक डाल टूटने की ध्वनि होती है—सम्भव है, यह किसी हाथी ने तोड़ी हो या बन्दरों की उछल-कूद से टूटी हो या फिर लकड़हारे ने लकड़ी काटी हो। इसी तरह पेड़ों के हिलने के भी कई कारण सम्भव हैं—कपि-समूह की क्रीड़ाएं, चीतल-साँभर आदि का चलना या हाथियों की हलचल।

इन सबकी समुचित जानकारी द्वारा ही चल रही गति-विधियों को समझा जा सकता है और तदनुकूल प्रतिक्रिया व तत्परता सम्भव है।

पत्तों-पेड़ों के हिलने से आने वाली ध्वनियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। हिरण, चीतल जैसे खुर-धारी प्राणियों के चलने से अधिक आवाज निकलती है। कठोर खुरों से पत्ते भी जोर से दबते हैं और अगल-बगल की झाड़ियाँ, पत्तियाँ भी हिलती हैं। हाथी मंदगामी तो होता ही है। उसके तलुए भी नरम होते हैं। इसलिए भूमि पर रखे जाने पर उन पैरों से कोई विशेष ध्वनि नहीं होती, पर उसके शरीर की रगड़ से पेड़-पौधे हिलते खूब हैं।

साँप जब घास-फूँस या शुष्क पत्तों पर चलते हैं, तो सरसराहट होती है। गोह के चलने पर भिन्न तरह की ध्वनि होती है। खड़-खड़, खड़-खड़। क्योंकि उसके पाँव छोटे-छोटे होते हैं और दुम जमीन पर घिसटती चलती है।

अन्य प्राणियों की भाषा समझने एवं शब्दों को पहचाने में कठिनाई भी हो सकती है, पर भावों की परख तो और सरल है। भाषा में ध्वनि और शब्दों की भिन्नता रहने से उन्हें समझने में कठिनाई हो सकती है, पर भावाभिव्यक्ति तो सार्वभौम है। संसार के किसी भी कोने में जाया जाय कष्ट के अवसर पर प्रायः सभी की विपन्न मुखाकृति होगी। सभी की आँखों में से आँसू टपकेंगे और विषाद की दर्द भरी छाया उभर रही होगी। प्रसन्नता के समय सर्वत्र हँसी, मुस्कराहट, आँखों में चमक दिखाई देगी। यही बात अन्य भावनाओं के सम्बन्ध में

है। मुखाकृति से अन्तरङ्ग में घुमड़ती हुई शोक, रोष, क्रोध, आवेश, भय, चिन्ता, निराशा, उत्साह, उल्लास, कामुकता आदि के भाव सहज ही उभरते देखे जा सकते हैं।

भावाभिव्यक्ति जो स्थिति मनुष्यों की है वही अन्य प्राणियों के सम्बन्ध में भी पाई जाती है। उसमें थोड़ा वहुत ही अन्तर होता है। मनुष्य अधिक सम्वेदनशील है इसलिए भाषा की सूक्ष्मता की तरह उसे भावों की अभिव्यक्ति भी अच्छी तरह करनी आती है। अन्य प्राणी भाषा की तरह भावों के प्रकटीकरण में पीछे हो सकते हैं, पर ध्यान-पूर्वक उनके चहरे को, आँखों तथा होठों को, अन्य अवयवों को देखा जाय तो उनके भीतर काम कर रही भावनाओं, प्रवृत्तियों, आकाँक्षाओं एवं सम्वेदनाओं को वहुत हद तक समझा जा सकता है। इस दिशामें यदि हम प्रयास करें तो मनुष्य परिवार से आगे वढ़कर प्राणि मात्र में अपनी आत्मीयता विकसित कर सकते हैं और आत्म-विस्तार का अधिक लाभ उपलब्ध कर सकते हैं। 

बदलती परिस्थितियों में स्वयं भी बदलें



परिस्थितियों के मनुष्य-जीवन पर पड़ने वाले जबर्दस्त प्रभाव से इनकार नहीं कर सकते पर वहाँ परमात्मा ने मनुष्य को ऐसी योग्यतायें भी दी हैं, जिनसे वह अपने आपको परिस्थितियों के अनुरूप ढाल सके। यदि मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता तो दण्ड भुगतने और असफल पड़े रहने का दोष उसी का है।

वस्तुतः परिस्थितियाँ संसार में कुछ हैं भी नहीं। अपने आपको परिवर्तनों के अनुसार बदलते न रहने की प्रतिक्रिया का नाम ही परिस्थितियाँ हैं। संसार में जितने भी प्राणी हैं, वे प्राकृतिक परिवर्तनों के साथ अपने आपको बदलते रहते हैं, यही कारण है कि वे बिना किन्हीं साधनों के भी मुक्ति, आनन्द, स्वास्थ्य और नीरोगिता का जीवन जीते

रहते हैं। एक दूसरे को खा जाने की प्रवृत्ति पशुओं और जङ्गली जन्तुओं की कही जाती है, तथापि आज मनुष्य जितना अशांत और द्वन्द्वों में फँसा हुआ है. उतने तो वन्य-पशु भी नहीं हैं, इसका एक मात्र कारण परि-स्थितियों के अनुरूप अपने आपको न बदलने का दोष है।

वातावरण परिवर्तनशील है। वस्तुयें बदलती रहती हैं, किसी भी स्थान के अनुकूल बने रहने का तात्पर्य यह है कि परिस्थितियाँ चाहे जिस दिशा में मुड़ें हमें उन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ बदलने की अथवा परिस्थितियों के अनुसार अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक प्रणाली को ढालने की क्षमता होनी चाहिये। काम तभी चलेगा, जब हम इतने प्राकृतिक हों कि हमारी प्रत्येक गतिविधि प्राकृतिक परिवर्तनों के साथ बहती चली जायें, यदि हम उसका उल्लंघन करेंगे तो निश्चय ही रोग, शोक, हारी-बीमारी का कष्ट उठायेंगे।

ध्रुवीय प्रदेशों में कुछ जन्तु जैसे लोमड़ी, रीछ और गिलहरियाँ अपने आपको वहाँ की परिस्थितियों के समरूप रखती हैं, वहाँ वर्ष भर वर्फ जमी रहती है। वर्फ श्वेत होती है, यह जीव भी अपने बालों को श्वेत रखते हैं, इससे यदि कोई बाहरी व्यक्ति इनको ढूँढ़ना चाहे तो ढूँढ़ नहीं सकता। रङ्ग की समरूपता के कारण यह अपने आपको वर्फ की चट्टानों के साथ इस तरह समायोजित कर लेते हैं कि शिकारी इनके पास घूमते रहते हैं तो भी पहचान नहीं पाते। मनुष्यों को भी ऐसे ही समाज परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, अन्य स्थानों पर पहुँचकर वह अपने आपको एकाकी अनुभव करके दुःखी अनुभव करता है पर यदि उसने अन्य प्राणियों से अनुकूलन की विद्या सीखी होती अर्थात् उस वातावरण के अनुरूप अपने आपको ढाल लेने की योग्यता का उपयोग करता तो वह जहाँ भी जाता, वहीं परस्पर प्रेम, विश्वास, एकता और आत्मीयता स्थापित करके प्रसन्नता अनुभव करता।

मरुस्थल में पाई जाने वाली बकरियाँ, हिरण और ऊँट आदि

वहाँ की प्रकृति को अक्षरशः ग्रहण कर लेते हैं, जिससे उनके शरीर भी भूरे और लहरियोंदार हो जाते हैं। कोई दूर से यह नहीं जान सकता कि वहाँ कोई खड़ा है क्या, और इस प्रकार वे अपने जीवन को सुरक्षित किये रहते हैं। कई सर्प जिस मिट्टी में रहते हैं, उसी रंग के हो जाते हैं, तितली पौधों-पौधों में जाकर उनके सौरभ और सौन्दर्य का आनन्द लेती है, इसके लिये वह किसी फूल से बँधती नहीं वरन् अपने आपको सभी फूलों के समान रङ्ग-विरङ्गा बना लेती है। टिड्डी जैसे कई कीड़े जो हरी-पत्तियाँ ही खाते हैं, अपने आपको हरा रखते हैं, वह हरे वृक्षों में बैठे रहते हैं पर बाहर का कोई व्यक्ति उनका पता नहीं लगा सकता।

समुद्री चिड़ियायें जैसे फ्लावर्स भारद्वाज (हार्क) टिटहरी आदि खुले स्थानों पर अण्डे देते हैं। टिटहरी, सारस आदि पक्षी पानी के बीच खुले भाग में अण्डे देते हैं। यदि वे अण्डों का रङ्ग अपनी मन-मर्जी से कुछ भी रखते तो कभी भी कोई हमलावर जानवर आते और उन्हें उसी तरह मारकर खा जाते, जैसे सामाजिक जीवन में संग्रह-वृत्ति वाले धनी लोगों को, जो दूसरे पीड़ित प्रजा वर्ग की सुविधाओं का कभी भी ध्यान नहीं देते, चोर और डकैट लूट ले जाते हैं। सामाजिक जीवन से अपना ताल-मेल न रखकर अपनी खिचड़ी अलग पकाने वाले लोग अपने आप कितना ही अहंकार प्रदर्शित करें पर भीतर अपनी सुरक्षा के लिये सबसे अधिक डरने वाले दुःखी लोग वे ही होते हैं, जो समाज की परिस्थितियों में बने रहते हैं, वह इन पक्षियों की तरह हैं, जो चौड़े में अण्डे देते हैं पर उनका रङ्ग इस तरह का रखते हैं कि जगी के रङ्ग में और उनके रङ्ग में कोई अन्तर दिखाई न दे। चील और बाज की आखें बड़ी तेज होती हैं, वे ऊपर मँडराते रहते हैं पर उन्हें इन अण्डों का पता भी नहीं चल पाता। समुद्र में एक चपटी मछली (फ्लैटफिश) पाई जाती है, इसी कोटि का सर्वत्र पाया जाने

वाला जन्तु गिरगिट है, ये जहाँ भी रहते हैं, अनुकूलन के द्वारा अपनी सुरक्षा बनाये रखते हैं। गिरगिट अपनी ओर किसी दुश्मन को आते देखता है तो वह जिस स्थान पर होता है, उस स्थान का रङ्ग निकाल-कर उसी में छुप जाता है। दुश्मन समझ नहीं पाता और इधर से उधर निकल जाता है, कई बार वे कोई तीव्र रङ्ग निकालकर दीवाल खड़ी कर देते हैं और आप स्वयं अपने आपको बचाकर निकाल ले जाते हैं। प्रकृति के यह उदाहरण बताते हैं कि संसार में अस्तित्व उन्हीं का सुरक्षित है, जो स्थिति के अनुसार अपने आपको बदल सकते हों।

यह रङ्ग बदलने की कला मनुष्य-जीवन में बड़े काम आती है। यदि हम अपने वातावरण का चारों ओर चौकसी से निरीक्षण करते रहें। उदाहरण के लिये आज लोगों में खाँसी, खसरा, कैंसर, तपेदिक आदि रोग बढ़ रहे हैं, हमें देखना चाहिये कौन-सी बुराइयाँ हैं, जो इन्हें जन्म देती हैं। अप्राकृतिक रहन-सहन, अहार-विहार, धूम्रपान, आलस्य, असंयम आदि के कारण ही यह बुराइयाँ बढ़ती हैं, यदि हमारी भी परिस्थितियाँ ऐसी ही हैं तो उनसे सुरक्षा का उपाय यही है कि हम अपना रङ्ग बदल डालें अर्थात् उन बुराइयों के आवरण को ही उतार फैंकें।

अनुकूलन की इस योग्यता का यह अर्थ नहीं कि यदि हम किसी बुरे समाज में जाते हैं तो वहाँ की बुराइयों को आत्मसात करना प्रारम्भ कर दें। ऐसी परिस्थितियों से बचाव की प्रेरणा कालिमा नामक तितली से ले सकते हैं। इसके पंखों का ऊपरी रङ्ग चमकदार होता है, परन्तु सतह का रङ्ग सूखी पत्ती की तरह का होता है। जब कभी वह किसी पौधे पर पंख सिकोड़कर बैठती है तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे यह कोई सूखी पत्ती हो। मनुष्य अपने मूल व्यक्तित्व को इस तरह आकस्मिक काल में छिपाकर अपनी सुरक्षा बनाये रख सकता

है पर जो अपने व्यक्तित्व को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाते हैं, शेखी-खोरी करते हैं, वे राह चलते, चाहे जिन मामूली व्यक्तियों के द्वारा ठग लिये जाते हैं।

दंडकीट (हाण्ड इन्सेक्ट) नामक कीड़ा सूखी टहनी की तरह का होता है, रङ्ग भी उसी तरह का कुछ भूरा-काला-सा होता है, मोटाई भी पतली टहनी के समान ही होती है। इसके पङ्ख हीं बड़े होते हैं पर अपनी इस विशेषता को वह बड़ी चतुराई से छिपाता है; जब किसी टहनी पर बैठता है तो पङ्खों को शरीर से इस तरह चिपका लेता है कि दूर से देखने पर ऐसा लगता है, जैसे यह पत्तीदार कोई टहनी ही हो और इस तरह वह अपने आपको दुश्मन से बचा लेता है। ये उदाहरण बताते हैं कि वातावरण समकूलता से व्यक्ति अपनी आत्म-रक्षा कर सकता है। इसमें उसे कुछ भी हानि नहीं होती।

बर्फीले क्षेत्रों में पाये जाने वाले रीछों के पास कोई वस्त्र नहीं होते, वे वहाँ के वातावरण को ही अपने में आत्मसात करके सुरक्षित रहते हैं। जिन दिनों बर्फ और कड़ाके की सर्दी पड़ती है, बेचारा स्वयं भी जकड़कर बर्फ में दब जाता है। छः महीने तक भालू उसी में कुछ खाये-पिये बिना ही पड़ा रहता है, यदि आदमी की तरह उसने भी कृत्रिम जीवन बनाया होता, अधिक कपड़े पहनने और तंग मकानों में रहकर अपने आपको ज्यादा शानदार दिखाने की भूल उसने की होती, असंयमित जीवन बिताया होता, तो एक ही कड़ाके में ढेर हो गया होता पर प्रकृति माता की गोद में पड़े रहने के कारण उसमें इतनी क्षमता आ जाती है कि वह छः महीने दबा रहकर भी मरता नहीं वरन् यह समय उसकी आयु-वृद्धि के काम आता है। छः महीने बाद जब धूप निकलती है, ऊपर की बर्फ पिघलकर बह जाती है, शरीर के रक्त में थोड़ी गर्मी आती है तो रीछ ऐसे ही अँगड़ाई लेकर उठ खड़ा होता है, जैसे रात की नींद लेकर सवेरे वह नई ताजगी प्राप्त कर रहा हो। प्रकृति का

घनिष्ठ सान्निध्य हमें भौतिक परिस्थितियों से सदैव ही सुरक्षा प्रदान करता है।

सरलता और सीधापन प्रकृति का स्वभाव है, हम जब अपनी मान-मर्यादा, पद-प्रतिष्ठा,धन-पुत्रों के बनावटी आवरण उतार देते हैं तो ऐसे ही सीधे, स्वाभाविक, सरल और सौम्य प्रतीत होते हैं, जैसे प्रकृति के दूसरे भोले-भाले प्राणी। कोई कहेगा, ऐसी स्थिति में तो जो आवेगा, हमें वह नष्ट कर डालेगा, बात ऐसी नहीं। प्रकृति हमें परिस्थितियों के अनुरूप संघर्ष के लिये भी उत्साहित करती है। हम उसके लिये तैयार न हों, तब तो एक दिन का जीवित रहना भी कठिन हो जाये। बुराइयों और दुष्प्रवृत्तियों का सामना करने के लिये भयानक आकार (टेरीफाइङ्ग अपियरेन्स) भी रखना आवश्यक है। हरे टिड्डे (ग्रास-होपर्स) दुश्मन को देखते ही अपने पंख फैलाकर भयानक आकृति बना लेते हैं। दुश्मन अचम्भे में पड़ जाता है और उसे चुपचाप लौटना ही पड़ता है। जब तक बन पड़ता है बिल्ली आत्म रक्षा के लिये भागती है पर जब वह यह समझती है कि कुत्तों से बचकर भाग निकलना सम्भव नहीं, तब वह अपने दाँत, मूछें और आँखों को ऐसे तरेरकर खड़ी हो जाती है कि कुत्तों की सिट्टी गुम हो जाती है और वे आक्रमण करना भूल जाते हैं। प्रकृति का यह गुण हमें बताता है कि यदि साहस और हिम्मत हो तो मनुष्य अपने से कई गुने बलवान् और भयानक व्यक्तियों से भी मोर्चा लेकर उन्हें परास्त कर सकता है पर साहस बाहर की देन नहीं, मनुष्य को उसे परिस्थिति के अनुरूप अपने ही भीतर से जागृत करना पड़ता है। यदि परिस्थिति आने पर वह संघर्ष के लिये तैयार नहीं होता तो कोई भी बुरा व्यक्ति या पशु उसे बन्धन से मार सकता है।

शत्रु के विरोधी पक्ष में आ जाने के कारण भी हम अपनी सुरक्षा ही नहीं अनुभव करते, वरन् संसार की बुराइयों के विरुद्ध अपना

साहस प्रदर्शित करने का यश भी प्राप्त करते हैं। प्रकृति का यह पक्ष हमें यह बताता है कि विरोधी शक्ति यदि न्यायोचित है तो कम शक्ति-शाली होने पर उसके साथ रहने से बुरे तत्त्वों से रक्षा हो जाती है। हमारे जीवन में सैकड़ों बुराइयाँ होती हैं। हम समझ नहीं पाते, उन्हें कैसे दूर करें पर जब 'अणुव्रत' सिद्धान्त के आधार पर कोई एक छोटी सी अच्छाई का भी व्रत लेकर उसका निष्ठापूर्वक पालन करने लगते हैं तो हमारी बुरी आदतों, बुरे तत्त्वों से रक्षा हो जाती है। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री बेट्स ने दक्षिण अमेरिका में जीव-जन्तुओं की बहुत दिन खोज की थी, उन्होंने पीयरिड नामक तितली का वर्णन करते हुए लिखा है—"कुछ पक्षी हेलीकोनिड तितली का शिकार नहीं करते। पर उन्हें पीयरिड का शिकार करना अच्छा लगता है। पीयरिड उनसे अपनी रक्षा करने के लिये विरोधी पक्ष के साथ हो जाती है। यद्यपि हेलीकोनिड में उसकी रक्षा करने की शक्ति नहीं होती किन्तु विरोध के फलस्वरूप ही वह आक्रमणकारी पक्षियों की दुष्टता को निरस्त कर देती है।"

अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल ढालने की यह सूझ मनुष्य ने भी विकसित की होती तो वह आज परिस्थितियों का दास न होकर मनचाही परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में समर्थ रहा होता। यदि हम अपने दृष्टिकोण में अब भी यह परिवर्तन कर लें, तो भविष्य में अपने जीवन को उन्नत, सफल और सुरक्षित बनाये रख सकते हैं। प्रकृति का यह सिद्धान्त सदैव समरस और अकाट्य है।

बैटसिन नकल करने की कला (दि आर्ट आफ बैटसिन एडाप्शन) जीव विज्ञान (जूलाजी) का एक बहु चर्चित सिद्धान्त है, जिसका अर्थ होता है, सामाजिक बुराइयों से आत्म रक्षा के लिये अपने आपको बदलना। बुराइयाँ कमजोर मन वालों पर आक्रमण करती हैं, हमें अभ्यास से अपने मन को ऐसा बनाना चाहिये, जिसमें कोई भी अप्रिय

परिस्थिति टकराकर ऐसे लौट जायें जैसे पहाड़ की खाड़ी से समुद्री लहरें।

जर्मन वैज्ञानिक श्री मुलर ने बहुत दिन तक अध्ययन करने के बाद बताया कि वंश परम्परा से कुछ तितलियाँ भिन्न जाति की होती हैं, किन्तु वे अपना रङ्ग-रूप और आकार इस तरह बनाती हैं, जैसे वह तितलियाँ जो स्वाद में कटु होती हैं और दुश्मन जिन्हें खाना तो दूर पास तक नहीं आते। इस तरह वे कमजोर होने पर भी अपना बचाव कर लेती हैं।

ऐसी ही एक कला 'मुलैरियन' नकल करने की कला (दि आर्ट आफ मुलैरियन एडाप्शन) कहते हैं, इसमें समान प्रकृति के लोगों के साथ मिलकर ऐसा संगठन बनाया जाता है, जिससे दुश्मन अपने आप ही पीछा करना छोड़ दे। धर्मशास्त्र में उसे तितीक्षा की संज्ञा दी जाती है। स्वामी विवेकानन्द जिन दिनों योगाभ्यास कर रहे थे उनके मन में कई प्रकार की वासनायें भी भड़कती रहती थीं। कई बार यह गन्दे विचार इतने तीव्र हो उठते थे कि उनको हटाना कठिन हो जाता था। विवेकानन्द हैरान थे, क्या करें तभी उन्हें एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। उन्होंने देखा एक ऐसा कीड़ा है, जो चींटियों को बार-बार पकड़कर खा जाता है। दुश्मन से बचने के लिये इन चींटियों ने एक तरकीब निकाली। पास ही कुछ ऐसी मकड़ियाँ रहती थीं, जिनका आकार और रङ्ग-रूप इन चींटियों की तरह का था। चींटियों ने उनसे मेल-मिलाप कर लिया और उनके साथ ही रहने लगीं। चींटियों और मकड़ियों के पास-पास आ जाने से उनकी संख्या भी अधिक हो गई।

लोभी व्यक्ति को जिस प्रकार हित-अनहित का, अच्छे-बुरे का विवेक नहीं रहता, उसी प्रकार उस कीड़े ने भी चींटियों की बढ़ोत्तरी देखी तो उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसने घात लगाई

और टप से चींटी के धोखे में एक मकड़ी को पकड़ लिया। उस मकड़ी का स्वाद इतना जहरीला था कि कीड़े को मूर्छा आ गई। होश आने पर वह इतना डर गया कि फिर उसने दुबारा चींटियों को छेड़ने का साहस नहीं किया।

इस दृश्य ने स्वामी विवेकानन्द को एक नई सूझ प्रदान की। उन्होंने निश्चय कर लिया कि यदि अब दुबारा कभी मन ने दुर्वासनायें उठीं तो उसे भी ऐसा ही कड़ुवा स्वाद चखायेंगे। दैववश उसी दिन जब वे भोजन बना रहे थे, एक लड़की उनके पास आ गई। उसे देखते ही उनका मन चंचल हो उठा। स्वामी जी तो पहले से ही घात में थे। उठे और जलते तवे पर बैठ गये। सारा चूतड़ जल गया। लड़की चीख मारकर भाग गई। विवेकानन्द एक महीने अस्पताल में तो पड़े रहे पर फिर दुबारा उनके मन में कभी कोई पाप-भावना नहीं आई।

डोनाउस क्राइसीपस नामक तितली, ततैये (वास्प्स) और टिड्डे (हारनेट्स) आदि अपने दुश्मनों से बचने के लिये बहुत चमकीले, भड़कीले, लाल, काले, पीले रङ्ग बदलने, दुर्गन्ध छोड़कर अपने आपको क्रोधी और जहरीला दिखाने की क्रिया करते हैं। दुश्मन डरकर भाग जाता है। इसी प्रकार मन में उठने वाली बुराइयों को उनके अप्रिय परिणाम दिखाकर डराया और धमकाया जा सकता है, उदाहरण के लिए पढ़ने में मन न लगे तो फेल हो जाने की निराशा का चित्रण, काम न करने पर भूख-प्यास और कपड़े-लत्ते की तंगी का चित्रण, कामवासना भड़के तो रोग, बुढ़ापा और दुर्बलता का चित्रण करके उन्हें डरा देना चाहिये।

हेनरी फोर्ड ने इसी सिद्धान्त के रचनात्मक अभ्यास से औद्योगिक सफलता अर्जित की थी। उन्होंने अपने एक संस्मरण में लिखा है— "व्यापार के प्रारम्भिक दिनों में मुझे बड़ा आलस्य और अनुत्साह रहता,

उस समय मैं अच्छे सम्पन्न भविष्य की कल्पना करता। मेरे बँगले होंगे, कार होगी, दास-दासियाँ होंगे, सुख के सब साधन होगे तो कितना अच्छा होगा। इन कल्पनाओं से आलस्य का अन्त हो जाता और मैं फिर दुगुने उत्साह से काम करने लगता। इसी तरह बढ़ते-बढ़ते मैं वर्तमान स्थिति तक पहुँचा।"

जीव-जन्तु अपने बचाव के लिए इस सिद्धान्त का बहुत उपयोग करते हैं, उदाहरण के लिए कटमछली या सीपिया अपने शरीर की एक थैली में स्याही जैसा एक तरल पदार्थ भरकर रखते हैं। अपने इस संचित संस्कार के कारण वे निर्भय विचरण करते रहते हैं, यदि उन्हें सामने से कोई दुश्मन आता दिखाई दिया तो उस थैली का रङ्गीन तरल पदार्थ काफी दूर तक उँड़ेलकर पानी को रङ्गीन करके आप उसी में छिपकर बैठ जायेंगे। शत्रु शिकार को देख नहीं पायेगा या एक ओर खड़ा ताकता रहेगा, मछली अपनी मस्ती से दूसरी ओर निकल जायेगी। जिन लोगों में ऐसे रचनात्मक स्वभाव होते हैं, वे ही संसार में उच्च सफलताएँ प्राप्त करते हैं, जो निराशावादी हर परिस्थिति के फंदे में फँस जाने वाले होते हैं, उन्हें तो छोटे-छोटे आघात ही मारकर नष्ट कर देते हैं।

कछुआ, सीप, घोंघा, मगर आदि अपनी त्वचा के ऊपर सुरक्षात्मक आवरण रखते हैं और जी चाहे जहाँ विचरण करते हैं, उनका बड़े से बड़ा शत्रु भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। संसार में माना विषम परिस्थितियों के अम्बार लगे हैं पर मनस्वी व्यक्तियों के लिये जैसे परिस्थितियाँ होती ही नहीं, वे मन को इतना मजबूत बना लेते हैं कि चाहे लाभ हो या हानि, सुख हो या दुःख, यश मिले या अपयश वे अपने आदर्श-सिद्धान्तों से उन सबको दबाकर मस्ती और निश्चितता का जीवन जीते हैं। ऐसे जीवन क्रम की गीता में बड़ी प्रशंसा की गई है। कर्मयोगी के लिये सांसारिक गति-विधियों से बचाव के लिए ऐसा ही सुरक्षात्मक

आवरण रखना नितान्त आवश्यक होता है।

संसार ऐसा विलक्षण है कि यहाँ बहुत शक्तिशाली और रूप-गुणशील भी कई वार बुराइयों की, आक्रमण की लपेट में आ जाते है, इसीलिये कहते हैं, न्याय और आत्मा की आवाज के लिये सबको समान रूप से प्रयत्नशील रहना चाहिए, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। दोनों समाज में रहते हैं, दोनों को ही सामाजिक उत्तरदायित्वों का पालन अनिवार्यतः करना चाहिए।

शेर जंगल का राजा होता है, बड़ा शक्तिशाली और एकान्त-वासी। तो भी कुछ मक्खियाँ और कीड़े उसे ऐसे काटते हैं कि कई वार उसकी जान के ग्राहक ही बन जाते हैं। उत्तरी अमेरिका में एक खूब-सूरत पक्षी 'स्कनस्' पाया जाता है और सूक्ष्मदर्शी चमगादड़ भी अपने दुश्मनों से बच नहीं पाते। यह अपनी आत्म-रक्षा के लिए अपने शरीर से एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध निकालकर दुश्मन को भगाते हैं। तात्पर्य यह है कि हमें संघर्ष के क्षणों में उन परिस्थितियों के लिए तैयार रहना चाहिए जो हमारी आदत के अनुकूल नहीं हों। इसके लिये 'पारक्यूपाइन' की तरह पहले से ही तैयार रहना चाहिये। इस जन्तु के शरीर पर छोटे-छोटे काँटे होते हैं। स्याही के शरीर पर भी काँटे होते हैं, साधा-रणतया वे उसके काम नहीं आते। क्रोध और नाराजी भी मनुष्य के लिये हितकारक नहीं पर जिस तरह आत्म-रक्षा के लिये यह जीव अपने काँटों को तरेर कर उन्हें डराकर भगा देते हैं, उसी तरह मनुष्य को परिस्थितियों में क्रोध और नाराजी भी व्यक्त करना ही चाहिये। उस समय यही हमारे धर्म हो जाते हैं। राष्ट्र-रक्षा, सामाजिक जीवन में व्याप्त बुरे तत्त्वों चाहे वह चोर-डकैत हों अथवा दहेज, रिश्वत लेने वाले क्रोध और नाराजी के काँटे तरेरने ही चाहिये, यदि प्रजा अपना यह अस्त्र नहीं सँभालती तो अवांछनीय तत्त्व बढ़ते हैं और समाज पर छा कर सर्वत्र त्रास देते हैं।

एटम बम विनाशकारी है, अन्य शस्त्रास्त्र लगता है, मानवता के हित में नहीं हैं पर सशस्त्र दुश्मन से बचाव की आवश्यकता आ पड़े तो प्रकृति यह बताती है कि आत्म-रक्षा के लिए वैज्ञानिक अस्त्रों का भी प्रयोग करना धर्म है। टारपिडो और नारसीन नामक मछलियों में शरीर से विद्युत उत्पन्न करने की क्षमता होती है। साधारणतया वह ऐसा करती नहीं पर यदि कोई दुश्मन पीछा करे तो ये विद्युत करेंट उत्पन्न कर उन्हें मार भगाती हैं। मनुष्य इन सभी गुणों का सम्मिश्रण है, प्रकृति अपने नन्हे जीवों के द्वारा उसे यह प्रेरणा देती है कि परिस्थिति के अनुसार मनुष्य को अपनी प्रत्येक क्षमता का प्रयोग कर मानवता की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

अमेरिका में 'हागनोज्ड' नामक एक सर्प पाया जाता है, वर्जीनिया में 'अपोसम' नामक कंगारू पाया जाता है, दोनों में परले सिरे की चतुराई होती है, यह जब अपने शिकारी को देखते हैं तो ऐसे निश्चेष्ट हो जाते हैं, मानो मर गये हों। शिकारी इन्हें मृत समझकर मुड़ता है तो यह पीछे से आक्रमण कर देते हैं। कई बार हमारे सामने भी ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं, जब कोई क्षमता काम नहीं देती, उस समय "देखि दिनन् को फेर रहिमन चुप ह्वै बैठिए" वाली कहावत के अनुसार चुप पड़ जाये पर जैसे ही परिस्थिति अनुकूल आये फिर क्रियाशील हो जाये। आत्म-रक्षा, आत्म-विकास और सामाजिक संघर्ष हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें हैं, उसके लिए भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न स्वरूप बनाकर नाटककारिता का परिचय और अभिनय का आनन्द लेते हुए जीना चाहिये। ऐसा रङ्ग-विरङ्गा जीवन ही सफल और सार्थक होता है।

रहस्यमय मछली के रहस्य

परिस्थितियों के अनुसार स्वयं का जीवनक्रम बदलने और प्रतिकूलताओं में भी जी लेने की सूझबूझ ईल मछली में देखी गयी। वर्षा

ऋतु इन मछलियों के लिए प्रतिकूल पड़ती है। इसलिए ये अगस्त के महीने में, वर्षा आरम्भ होते ही अपना स्थान छोड़कर अन्यत्र चली जाती है और जनवरी में, जब वर्षा बन्द हो जाती है तो वापस अपने स्थान पर लौट आती है। सत्रहवीं शताब्दी में जल-जन्तु के शोधकर्त्ता वैज्ञानिक फ्रांसिस्को रेडी ने ईल मछली से संबन्धित इन तथ्यों का पता लगाया।

यों सर्प की आकृति वाली इस मछली को सदा से रहस्यमय समझा जाता है। न केवल अपनी आकृति के कारण, वरन् प्रकृति से भी यह विचित्र और रहस्यमय है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व तक ईल मछली के बारे में यह दन्त कथा प्रचलित थी कि वह एक विशेष जाति के सर्प से ही विवाह रचती है। पर सत्रहवीं शताब्दी में जल-जन्तु शोध कर्त्ता फ्रांसिस्को रेडी ने ईल के बारे में यह विचित्र बात देखी। अगस्त से जनवरी तक यह मछली वर्षा-ऋतु में अपने पूरे परिवार के साथ बाल-बच्चों सहित अन्यत्र चली जाती है। इतने दिन तक वह कहाँ रहती है और यकायक बच्चे कहाँ से आ जाते हैं यह एक रहस्य ही बना हुआ था जिसको फ्रान्सिस्को महोदय ने ढूँढ़ निकाला।

ईल की कई जातियाँ हैं वे इंग्लैंड, आइसलेण्ड, उत्तरी अमेरिका ग्रीनलेण्ड, जापान, आस्ट्रेलिया, आर्कलेण्ड, न्यूजी लेण्ड आदि देशों के नदी-तालावों में पाई जाती हैं। पर जब उसको, ऋतुकाल आता है तो प्रणय के लिए एवं प्रजनन की प्रक्रियायें सम्पन्न करने के लिए समुद्र में जाने का रास्ता ढूँढ़ती है। नदी, नालों को पार करती हुई वह किसी न किसी प्रकार समुद्र में जा पहुँचती है। वहीं वह पत्नी पद ग्रहण करती है और वहीं माता बनती है। यदि उसे समुद्र में जाने का अवसर न मिले तो फिर आजीवन ब्रह्मचारिणी का कठोर व्रत पालन करके ही जिन्दगी काट लेती है।

डेनमार्क निवासी एक जन्तु वैज्ञानिक जौनेस सिमिट ने पता

लगाया कि ईल समुद्र में ही नहीं वरन् एक विशिष्ट स्थान पर ही अपना गृहस्थ बनाती है। जहाँ-तहाँ वह प्रणय प्रजनन नहीं करने लगती। योरोप की ईल को अमेरिका तक पहुँचने की लम्बी और कष्ट साध्य यात्रा में कई बार डेढ़ वर्ष या ढाई वर्ष तक लग जाते हैं। यह ठीक समय पर चलती है और ठीक समय पर पहुँचती है। यदि वह समय चूक जाय तो वह एक वर्ष रुकना ही उचित समझती है, समय की पावन्दी और चलने तथा पहुँचने का समय उसे रेलगाड़ी की तरह ही याद रहता है और उसमें वह चूक प्रायः नहीं ही करती।

यह बड़ी कठिन यात्रा है। इसमें उसे अनुकूल आहार न मिलने पर भूखा रहना पड़ता है। समुद्री क्षारों के प्रभाव से उसकी चमड़ी का रङ्ग पलट जाता है। उस पर भी मांसाहारी जल-जन्तुओं से प्राण बचें तब वह अपने प्रियतम का घर ढूँढ़ पाती है। उसका विवाह समुद्र की तली में २०० से ४०० मीटर नीचे होता है। वहीं वह अण्डे देती है। अण्डों से निकलने के बाद जब बच्चे चलने-फिरने लायक हो जाते हैं तो उनके लालन-पालन का भार पति के कन्धों पर नहीं डालती वरन् अपने इन सब बाल-गोपालों को लेकर वह प्रदेश की ओर चल पड़ती है, जहाँ का अन्न-जल खाकर वह बड़ी हुई थी।

अविकसित समझी जाने वाली ईल मछली—मर्यादा पालन और शालीनता के सम्बन्ध में विकसित और बुद्धिमान समझे जाने वाले मनुष्य को बहुत कुछ सिखा सकती है, प्रणय और प्रजनन के लिये उपयुक्त पात्र और स्थान का वह चुनाव करती है और उसे क्रीड़ा-कौतुक भर नहीं मानती वरन् उसके लिए कष्ट साध्य तपस्या भी करती है।

मातृभूमि का प्यार उसे कितना अधिक है। लौटकर वहीं आती है और समुद्र जैसे विशाल साधन सम्पन्न के सहारे रहने की अपेक्षा अपने यहाँ की अन्न-जल प्रदान करने वाली मातृभूमि में ही दुःख-सुख के दिन काटती है। भारत के अन्न-जल से पले, यहीं से शिक्षा पाये

लड़के जब अधिक सुविधाओं के लालच में विदेशों के लिए भाग खड़े होते हैं और अपनी योग्यता से मातृभूमि को लाभान्वित करने के समय उसे धोखा देकर चले जाते हैं, तब यही कहना पड़ता है कि इन सुशिक्षितों से तो अशिक्षित 'ईल' हजार गुनी अच्छी है।

मर्यादाओं और नीति नियमों से बँधा शिष्टशालीन व सभ्य जीवन ही प्रकृति की प्रेरणा है। परिस्थितियों के अनुसार अपने को बदल लेना और प्रगति क्षेत्र में आगे बढ़ते रहने पर ही जीवन सफल और सार्थक होता है। प्रकृति अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य को यह शिक्षण देती है।

इन सभी गुणों और शिक्षाओं से ऊपर है स्वायत्तता का गुण। संसार में सामर्थ्यवान लोग ही जीते हैं। "वीर भोग्या वसुन्धरा" का उद्घोष सबसे पहले हम भारतीयों ने ही किया था, उसका आधार हमारी समर्थता ही थी। सामर्थ्यवान मनुष्य ही अपने आपको, अपनी बुराइयों को तथा शत्रुओं को जीत सकता है। शेर, चीता, हाथी, मगर, सूअर यह जंगल के बलवान जीव जंगल में स्वच्छन्द विचरण करते हैं, उन्हें केवल मनुष्य का ही भय रहता है और किसी का नहीं, क्योंकि उन्हें अपनी सामर्थ्य पर भरोसा होता है, वह अपनी शक्ति से आत्मरक्षा ही नहीं आक्रमण भी कर सकते हैं, इसी प्रकार मनुष्य को भी शक्तिशाली होना चाहिए। पाप और दुष्कर्म से बचे रहने के लिए हम भगवान से तो डरें पर अच्छे उद्देश्य, आदर्श और पार्थिव सुखोपभोग के लिए वर्तमान परिस्थितियों में हमें अपनी आंतरिक सामर्थ्य को इतना स्वायत्त बनाना चाहिए कि आवश्यकता पड़े तो विरोधियों को भी बलपूर्वक भी मार और भगाया जाया जा सके। जनसंख्या बढ़ाने से नहीं, आंतरिक सामर्थ्य बढ़ाने से ही हम बदली हुई परिस्थितियों में अपने आपको स्थिर और सम्मानित रख सकते हैं, दुर्बलों के लिये तो संसार में पग-पग पर कठिनाइयों के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

संसार परिवर्तनशील है। पल-पल पर परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, उनसे हम प्रभावित भी होते रहते हैं। इसीलिये प्रकृति ने हमें वह सारी क्षमतायें दी हैं, जिनका सम्यक् उपयोग करके हम सुरक्षित, समाज और समर्थ व्यक्ति व जाति बन सकते हैं। प्रकृति के असंख्य छोटे-छोटे जीव इसी बात की प्रेरणा देते हैं।

मुद्रक : प्रमोद प्रिण्टर्स, गुड़हाई बाजार, मथुरा

ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान (शान्ति-कुञ्ज) हरिद्वार के अनुसन्धान और परीक्षण पक्षों को उन सबके सहयोग की अपेक्षा है जो अध्यात्म का विज्ञान की पृष्ठभूमि पर प्रतिपादन उद्देश्य की उपयोगिता समझते हैं और इस प्रयास के गतिशील होने के समथक हैं।

दार्शनिक अनुसन्धान के लिए अनेकानेक ग्रन्थ सन्दर्भों की देखभाल करनी होगी। इसके लिए ब्रह्मवर्चस् का अपना पुस्तकालय अपर्याप्त हैं। इसके लिए सन्दर्भ सामग्री, सुसम्पन्न पुस्तकालयों में से खोजनी पड़ेगी। विश्व विद्यालयों के पुस्तकालय इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से उपयोगी हो सकते हैं। कहीं-कहीं कालेजों की लाइब्रेरियाँ भी दार्शनिक स्तर के साहित्य से सुसम्पन्न मिलती हैं। कई सार्वजनिक पुस्तकालयों में भी ऐसी सामग्री मिल जाती है। इन संस्थाओं से सम्बन्ध साधने और वहाँ जो उपयोगी उपलब्ध हो उसका सञ्चय करने से प्रस्तुत अनुसन्धान कार्य को सहायता मिलेगी।

भौतिक प्रयोजनों के लिये अनेकानेक प्रयोग परीक्षण सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रों में चलते रहते हैं। इनकी मूल दशा तो भौतिक उपलब्धियाँ ही होती हैं, पर उनमें से भी कई वार कई तथ्य ऐसे सामने आ जाते हैं जो अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय में उपयोगी सिद्ध हो सकें। इस स्तर की सामग्री प्रस्तुत प्रयोगशालाओं से सम्बन्ध बनाये रहने, उनके परीक्षणों

की जानकारी रहने से समय-समय पर उपलब्ध होती रह सकती हैं। यह संकलन ब्रह्मवर्चस् के परीक्षण पक्ष मे निश्चित रूप से सहायक सिद्ध होगा।

स्थायी साहित्य के अतिरिक्त कई बार क्षेत्रीय प्रकाशनों में ऐसी सामग्री छपती रहती है, जो आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन की दृष्टि से बहुत मार्मिक होती है। पुनर्जन्म, कर्मफल, अतीन्द्रिय शक्तियों की साक्ष्य तथा प्रकृतिगत रहस्यमयी घटनाओं के विवरण—क्षेत्रीय प्रकाशनों से कटिंग के रूप में संग्रह किये और भेजे जा सकते हैं। इसप्रकार के योगदान को भी ब्रह्मवर्चस् शोध का ही एक आवश्यक अङ्ग माना जाता है।

स्थानीय पुस्तकालयों से तथा प्रयोगशालाओं का पता लगाकर उनसे सम्पर्क साधने तथा उपयोगी सामग्री सङ्कलित करने के लिए उपयुक्त मनीषियों की सहायता आवश्यक होगी। इसके लिए संस्थान के शोध सदस्य वहाँ बनाये जारहे हैं, जहाँ उपरोक्त स्तरकी सामग्री उपलब्ध हो सके। जिन्हें रुचि एवं उत्साह हो —ब्रह्मवर्चस् (शान्ति कुन्ज) हरिद्वार के पते पर पत्र व्यवहार करलें। ऐसे व्यक्तियों को यहाँ के शोध संस्थान का सम्मानित सदस्य मानकर उन्हें यहाँ से विस्तृत मार्ग दर्शन देने की व्यवस्था है। इस तरह की स्वाध्याय—प्रवृत्ति उनके स्वयं के लिए वरदान सिद्ध होती है।

3

अध्यात्म का वैज्ञानिक प्रतिपादन साहित्य

प्रस्तुत बुद्धिवादी युग में तर्क, तथ्य, प्रत्यक्ष, प्रमाण एवं विज्ञान को प्रामाणिकता मिली है और शास्त्र, श्रद्धा एवं आप्त वचनों को अमान्य किया गया है। इस मनःस्थिति में पनपने वाले नास्तिकवाद एवं स्वेच्छाचार को निरस्त करने के लिए युगदृष्टा गुरुदेव की लेखनी से अभिनव युग साहित्य सृजा गया है। प्रत्येक पुस्तक विचारशील वर्ग के लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद है।

(१) विवाद से परे ईश्वर का अस्तित्व, (२) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ?, (३) दृश्य जगत के अदृश्य संचालन सूत्र, (४) चेतना की प्रचण्ड-क्षमता एक दर्शन, (५) असीम पर निर्भर ससीम जीवन, (६) मनुष्य चलता-फिरता पेड़ नहीं है, (७) पांच प्राण—पांच देव, (८) दिव्य-शक्तियों का उद्भव प्राण शक्ति से, (९) मानवीय क्षमता—असीम अप्रत्याशित, (१०) अणु में विभु—गागर में सागर (११) आत्मा न नर है, न नारी, (१२) मानवीय मस्तिष्क विलक्षण कम्प्यूटर (१३) अतीन्द्रिय क्षमताओं की पृष्ठभूमि, (१४) जड़ के भीतर विवेकवान चेतना, (१५) शरीर की अद्भुत क्षमताएं और विलक्षणताएं (१६) मस्तिष्क प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष, (१७) क्या धर्म अफीम की गोली है ? (१८) धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं पूरक, (१९) विज्ञान को शैतान बनने से रोकें, (२०) पुनर्जन्म एक ध्रुव सत्य, (२१) स्वर्ग नरक की स्वसंचालित प्रक्रिया, (२२) तात्विक दृष्टि से बंधन मुक्ति, (२३) मरें तो सही पर बुद्धिमत्ता के साथ (२४) भूत कैसे होते हैं? क्या करते हैं ?, (२५) पितरों को श्रद्धा दें—वे शक्ति देंगे, (२६) सपने झूठे भी सच्चे भी, (२७) शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म, (२८) आध्यात्मिक काम विज्ञान, (२९) जीव-जन्तु बोलते भी हैं—सोचते भी हैं, (३०) संसार चक्र की गति प्रगति, (३१) असामान्य एवं विलक्षण, किन्तु सम्भव और सुलभ, (३२) मनुष्य गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु, (३३) दृश्य-जगत की अदृश्य पहेलियाँ (३४) हम सब एक-दूसरे पर निर्भर, (३५) चेतना का सहज स्वभाव, स्नेह, सहयोग, (३६) सहृदयता आत्मिक प्रगति के लिए अनिवार्य, (३७) बच्चे बढ़ाकर अपने पैरों कुल्हाड़ी न मारें, (३८) युग शक्ति गायत्री का अभिनव अवतरण (३९) ब्रह्मवर्चस्, की ध्यान धारणा (४०) कुण्डलिनी महाशक्ति और उसकी संसिद्धि, (४१) सर्वोपयोगी गायत्री साधना, (४२) गायत्री के पांच मुख पांच दिव्य कोश।

प्रत्येक की छपाई-सफाई सुन्दर ! कवर आकर्षक। पृष्ठ संख्या ११२ मूल्य तीन रुपया। डाक व्यय अलग।

पूरे सेट का मूल्य ११०) डाक व्यय मुफ्त।

अखण्ड-ज्योति प्रकाशन, मथुरा।